306

शक्तिपीठ-प्रकाशनमाला प्रथम पुष्प

श्रीपरास्तोत्रषड्रसामृतम्

[१-सटीक और भाषार्थ सहित 'परा-पूजा-प्रकाश-स्तोत्र, २-श्रीकुब्जिका-स्तोत्र, ३-श्रीपरा-कवच ४-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी-त्रिशती-स्तोत्र, ५-वैदिक तथा तान्त्रिक वाञ्छाकल्पलता एवं ६-श्रीसुभगोदय-स्तुति'-सहित]
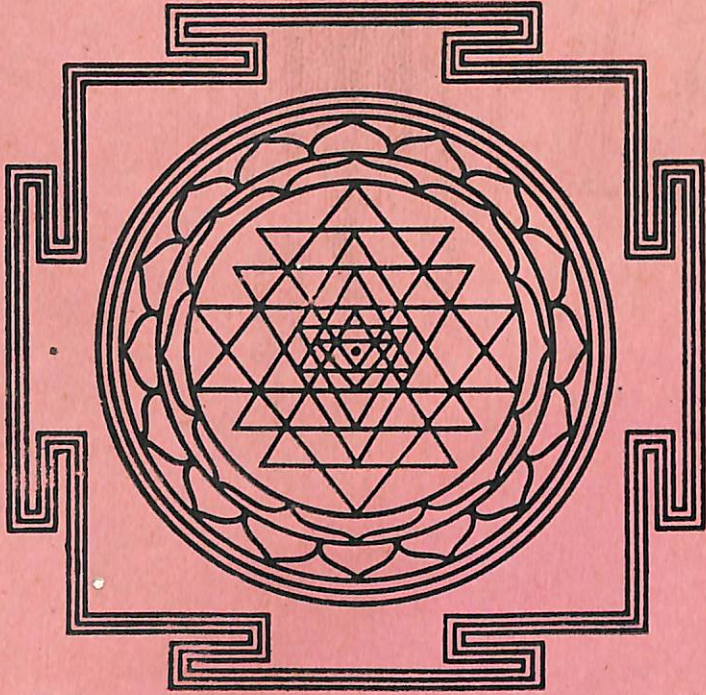
प्रधान सङ्ग्राहक, संशोधक और सम्पादक—
आचार्य पं० श्री रमानाथ शास्त्री योग-तन्त्र-कर्मकाण्ड-विशारद

सम्पादक—**डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी**, आचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०,

प्रबन्ध-सम्पादक—**श्री हर्षनाथ रमानाथ शुक्ल, बी० कॉम०; एल-एल० बी०**

प्रकाशन-स्थान :—

श्रीनिगमागमानुसन्धान-केन्द्र, शक्तिपीठ, मुडेटी,

(साबरकांठा, गुजरात)

शक्तिपीठ-प्रकाशन माला—१ पुष्प
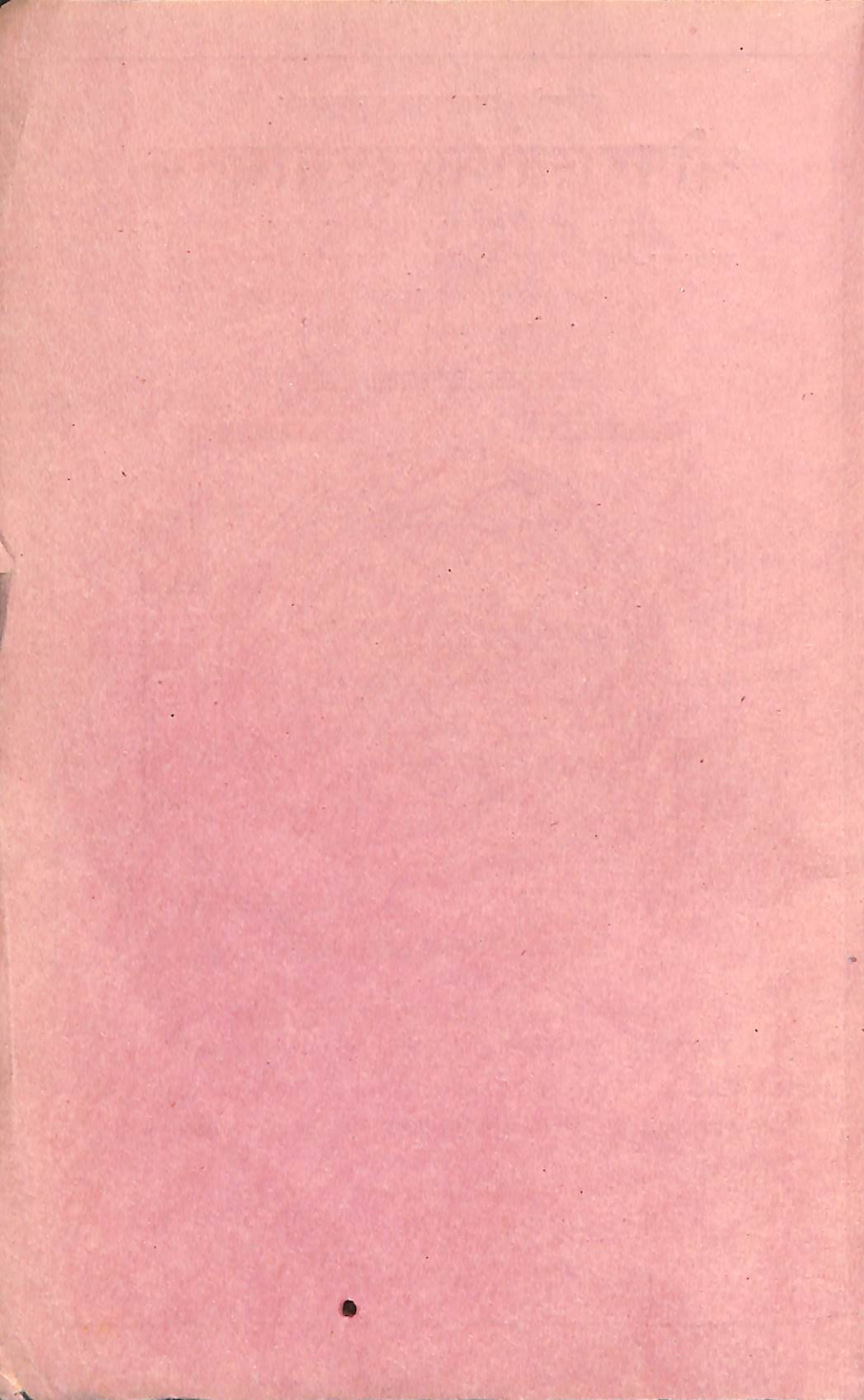
श्रीपरास्तोत्रषड्रसामृतम्

[१-सटीकंभाषार्थ भूषितञ्च 'परापूजा-प्रकाशस्तोत्रम्, २-श्रीकुब्जिका-स्तोत्रम्, २-श्रीपराकवचम्, ४-श्रीमहात्रिपुरसुन्दरो-त्रिशती-स्तोत्रम्, ५-वैदिकी-तान्त्रिकी-वाञ्छाकल्पलता-द्वयम् ६-श्रीसुभगोदय-स्तुतिश्च]

समादरणीय श्रीमद् बलजिन्नाथ महाभागेभ्यः
सादरम् —
रुद्रदेवत्रिपाठी
12/6/85

धानसङ्ग्राहकः संशोधकः सम्पादकश्च—

आचार्यः पं० श्रीरमानाथशास्त्री,
योग-तन्त्र-कर्मकाण्ड-विशारदः

•

सम्पादकः —

डॉ रुद्रदेवत्रिपाठी, आचार्यः, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०
प्राचार्यः —केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठम्, जयपुरम् (राज०)

दिल्ली विद्यापीठम्

•

प्रबन्ध-सम्पादकः —

श्रीहर्षनाथ-रमानाथशुक्लः, बी० कॉम०, एल-एल० बी०

•

प्रकाशन-स्थलम्

श्रीनिगमागमनुसन्धान-केन्द्रम्
शक्तिपीठम्, मुडेटी
(साबरकांठा, गुजरात)

प्रकाशक :—
आचार्य पं० रमानाथशास्त्री
श्रीनिगमागमानुसन्धान केन्द्र,
शक्तिपीठ, मुडेटी
(जि० साबरकांठा, गुजरात)

प्रकाशन वर्ष :—
१९८२ ई०

प्रथम संस्करण
१००० एक हजार प्रतियां

मूल्य—१५==०० पन्द्रह रुपये मात्र

—०

पुस्तक प्राप्ति के अन्य स्थान

१- श्रीहर्षनाथ रमानाथ शास्त्री
बी० काम० एल-एल बी०
बी० आर/२ श्रीविजया भवन,
आल्टामाउण्ट रोड, बम्बई-४००,०२६

२- श्रीनाथ ट्रेडिंग कम्पनी
श्रीनिवास पोलो ग्राउन्ड
हिम्मत नगर (गुजरात)

३- श्रीव्यवस्थापक
निगमागमानुसन्धान केन्द्र
मोटा अम्बाजी
(साबरकांठा, गुजरात)

४- डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी, प्राचार्य
केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
के-१४ अशोक मार्ग, सी स्कीम
जयपुर (राजस्थान)

श्री परम्बा भगवती

महात्रिपुरसुन्दरी
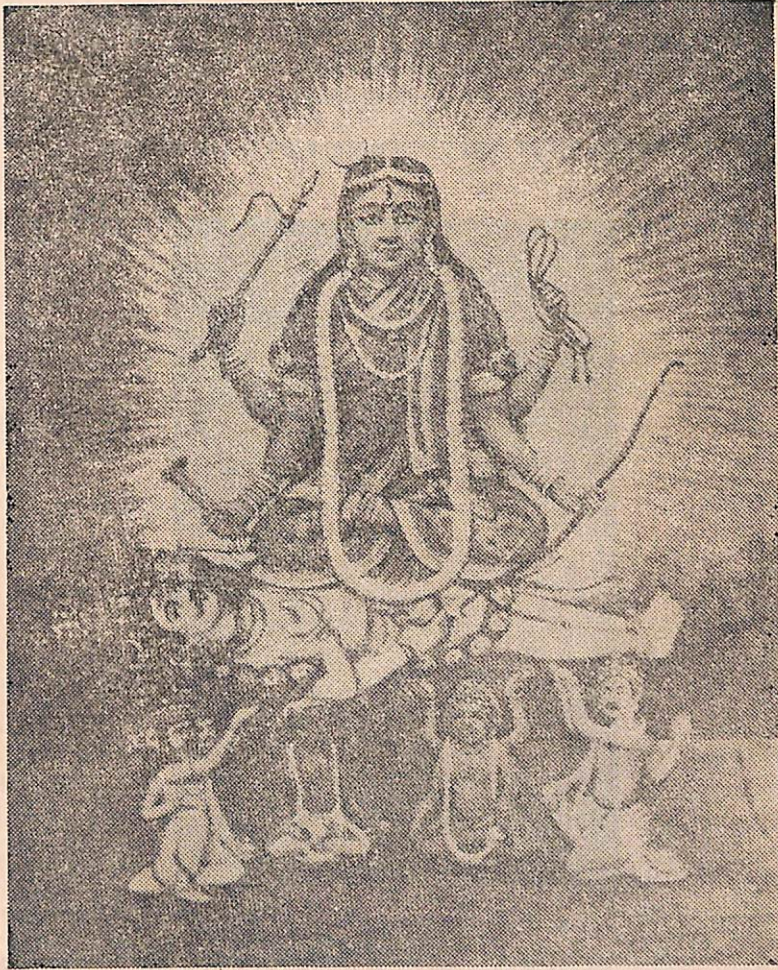
परापराणां परमा, भक्त-पालन-तत्परा ।
पञ्चप्रेतासनासीना, परामबा प्रीयतां सदा ।।

—रुद्रस्य

पं० रमानाथशास्त्री
योग-तन्त्र-कर्मकाण्ड-विशारद
शक्तिपीठ, मुडेटी (साबरकांठा) (गुजरात)
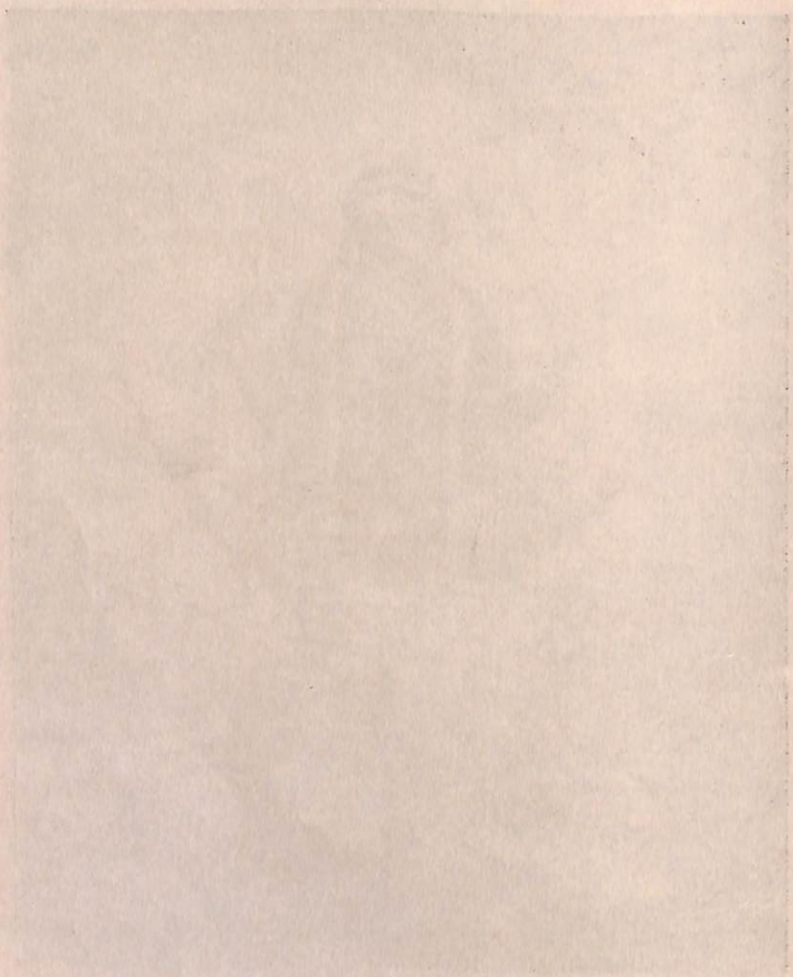
समर्पण

विश्वविजयी, कुलशिरोमणि, तन्त्रशास्त्रमर्मज्ञ,
परम-पूज्य, अनेक उत्तमोत्तम तान्त्रिक ग्रन्थरत्नों के प्रणेता,
महान् साधक, मूर्धन्य आगमविद्, नेपालराणा-कुलावतंस,
लेफटीनेन्ट जनरल, रथी

राजर्षि श्री धनशम्शेरजङ्गबहादुर राणा महोदय,

आपके मणिपुरधामवास से नेपाल और भारत ही नहीं,
अपितु सारा विश्व आगम के अमृतपान से
वञ्चित होने का अनुभव कर रहा है।
आपके महाप्रयाण की प्रथम पुण्यतिथि पर
आपके ही कृपा-प्रसाद से प्राप्त यह
'श्रीपरा-स्तोत्र-षड्रसामृतम्
आपको सविनय अर्पित है।

—रमानाथ शास्त्री

जय नेपाल श्रोः जय पशुपतिनाथ

विश्वविजयी, कुलशिरोमणि, लेफ्टीनेन्ट जनरल

राजर्षि श्रीधनशम्शेरजङ्गबहादुर राणा साहब

तथा

तन्त्रविद्याविशारद, सद्गुरुस्वरूपा, पूज्य माता

श्रीमती श्रीरूपदिव्येश्वरी राणा

मधुबाला-रमानाथौ शास्त्रिणौ साधकावुभौ ।
प्रणम्य सद्गुरू भक्त्या कामयेते शुभाशिषम् ।।

प्राक्कथनम्

आगम और निगम भारतीय-संस्कृति के मूल स्रोत हैं। इन्हीं की अमृतमयी स्तोत्रधारा मानव-मात्र के कल्याणार्थ प्रचरित और प्रसृत हो रही है। इस धारा के प्रवाह में अनेकरूपता है, जिसमें कहीं भाषा का उद्दाम उच्छलन है तो कहीं भावों की भीनी-भीनी गन्ध स्तोतव्य एवं स्तोता के अन्तरङ्ग को सुरभित कर रही है। कहीं छन्द की छटा मन्द-मन्द आमोद प्रदान करती है तो कहीं अलङ्कारों की झङ्कार से मन को मधुरिमा से सराबोर कर रही है। किन्तु इन सब के अतिरिक्त एक और अभिनव प्रकार इसमें निखर रहा है और वह है **"आगमिक उपासना के उदात्त तत्त्वों का सरस समावेश।"**

भगवती पराम्बा की स्तोत्र-परम्परा तान्त्रिक-सम्प्रदाय में सर्वोपरि मानी जाती है, क्योंकि 'परा-विद्या' सुधा के समान परमानन्ददायिनी है। इसे प्राप्त करके साधक त्रिकालज्ञ बन जाते हैं। जो कुछ भूत है वह तथा जो भविष्य में होने वाला है, वह समस्त जागतिक ज्ञान हस्तामलकवत् हो जाता है, और यह होता है महाशक्ति के उद्-बोधन से। यह महाशक्ति परा ही है।[1]

'आगमिक निरुक्ति के अनुसार 'परा' शब्द की व्युत्पत्ति और परिभाषा इस प्रकार है— पर = प, र, आ इति च्छेदः प = पातालाद् ऊर्ध्वं, र = रमन्ती रमणं वा विधाय चक्रेषु नाडीषु संस्थानेषु शक्तिसञ्चरणं कृत्वा, आ = आकाशे गमनं विधाय महाशक्तिरूपं धारयति ।'

अर्थात् 'परा' शब्द में **'प र और आ'** अक्षरों का समावेश है तथा इनमें **'प'** का अर्थ— पाताल से ऊपर की ओर, **'र'** का अर्थ— चक्र, नाडी अथवा शरीर-संस्थानों में रमण सञ्चरण करती हुई तथा **'आ'** का अर्थ है—आकाश में गमन करके जो महाशक्ति-रूप को धारण करती है वह परा।

इसी लिये नाथसम्प्रदाय में कहा जाता है कि—**'पाताल की गङ्गा आकाश चढ़ा ले'** अथवा **'धमक के फेरि आकाश में धावे'**। अतः यह कथन सत्य ही है कि— **'परा-मधिगत्य सर्वं ज्ञानम्'** इति।

यह हमारे लिए अत्यन्त हर्ष का विषय है कि **पूज्य पं० श्रीरमानाथजी शास्त्री** 'योग-तन्त्र-कर्मकाण्ड-विशारद' ने अपने सतत अध्यवसाय से भगवती पराम्बा की कृपा प्राप्त की है तथा परिश्रमपूर्वक दुर्लभ स्तोत्रसाहित्य का सम्पादन कर साधक-समुदाय के कल्याणार्थ उसे प्रकाशित करने के लिए कृतसङ्कल्प हैं। प्रस्तुत **श्रीपरास्तोत्र-षड्रसामृतम्** इसी सङ्कल्प की प्रथम परिणति है। इस सङ्ग्रह में क्रमशः छह स्तोत्रों का सङ्कलन

---

१. पराविद्या सुधासदृशी महानन्दमयी भवति। तामधिगत्य साधकास्त्रिकालज्ञा भवन्ति। यद्भूतं यच्च भाव्यं सर्वं जगद् ज्ञानमयं हस्तामलकवद् भवति। तत् महाशक्त्युद्बोधनेनैव। इत्यागमोक्तेः।

है। यथा—

१. **श्रीपरापूजा-प्रकाश-स्तोत्र**—(यह अन्वय, व्याख्या एवं भाषानुवाद से भूषित है।) २७ छन्दों में निर्मित यह स्तोत्र छह आम्नायों के क्रम से भगवती परा की उपासना-पद्धति को रहस्यपूर्ण ढग से व्यक्त करता है। इसकी प्रत्येक पङ्क्ति आगम-प्रामाण्य से परिपूर्ण तथा भक्तिभाव से भरी हुई है।

२. **श्रीकुब्जिका-स्तोत्र** (मूलमात्र है) जो कि '**ईडे सकलसम्पत्त्यै पश्चिमाम्नाय-देवताम्**, इस उक्ति के अनुसार पश्चिमाम्नाय देवता का रहस्यपूर्ण स्तोत्र है। इसके पाठ से सर्वविध सम्पत्ति की प्राप्ति सहज है।

३. **श्रीपराकवच**—(मूल) यह कवच महाषोडशी की आराधना करनेवालों के लिये 'रक्षाकर-स्तोत्र' के रूप में प्रयोज्य है। कवच-पाठ और कवचधारण की गरिमा से उपासकसमाज पूर्ण परिचित ही है, अतः यह परमोपयोगी है।

४. **श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी त्रिशती** (मूल), त्रिशती का महत्त्व सर्वसम्पूर्तिकर स्तोत्र के रूप में सर्वमान्य है। इसमें मन्त्रों का ग्रथन भी भगवती की नामावली के साथ हुआ है, अत: यह अद्वितीय है।

५. **वाञ्छाकल्पलता** (वैदिक एवं तान्त्रिक)—समस्त विघ्ननिवारण, लक्ष्मी-प्राप्ति एवं सांसारिक कार्य-कलापों में विजय प्राप्त करने के लिए पूर्णाभिषेकप्राप्त साधक रात्रि के अन्तिम प्रहर में इसका पाठ करते हैं। '**वैदिक-वाञ्छाकल्पलता**' तो यत्र-तत्र प्रकाशित भी हुई थी किन्तु '**तान्त्रिक-वाञ्छाकल्पलता**' अब तक कहीं से भी प्रकाशित नहीं हुई है। शास्त्रीजी ने कृपा करके सर्वप्रथम इसका प्रकाशन करवाया है। यह सद्यः सिद्धिप्रद है।

६· **श्रीसुभगोदय-स्तुति**— श्रीगौड़पादाचार्य-रचित यह स्तुति समयाचार-साधना के रहस्यों को व्यक्त करती है तथा श्रीशङ्कराचार्य-विरचित '**सौन्दर्य-लहरी**' के प्रारम्भिक रहस्य को भी स्पष्ट करती है।

इस प्रकार स्तोत्ररूपी छह रसों को अमृत के रूप में प्रस्तुत करनेवाली इस लघु-पुस्तिका को आदरणीय शास्त्रीजी के निर्देशानुसार मुझे सम्पादित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ, इसमें पूज्य गुरुदेव श्रीविद्यारण्यजी महाराज की कृपा एवं मां परा की अनुकम्पा ही कारण है।

यह इस परम्परा का प्रथम भाग है द्वितीय भाग में "**पूजाक्रम तथा सृष्टि-स्थिति-संहार-अनाख्या-भासाक्रमयुता खड्गमाला**" प्रकाशित करने का विचार है जो शीघ्र ही फलवान् होगा। इस पुस्तिका में प्रकाशित स्तोत्रों को गुरुमुख से श्रवण कर उनकी आज्ञा तथा अपने दीक्षा-विधानोक्त अधिकार के अनुसार पाठ करके साधक-गण यथासमय लाभ उठाएँ, यही कामना है।

डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठी
(सम्पादक)

'संक्षिप्त जीवन-परिचय'

योग-तन्त्र-कर्मकाण्ड-विशारद

पण्डित श्री रमानाथ शास्त्री
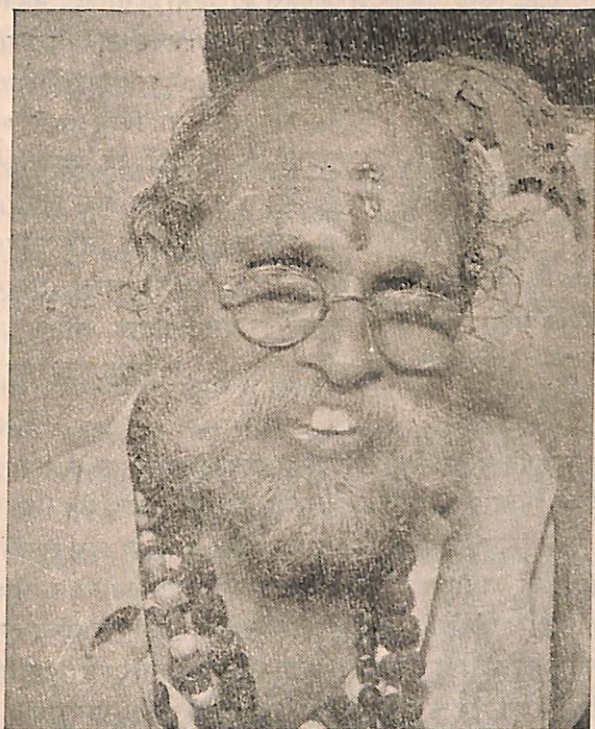
गुजरात की पुण्यभूमि ने इस देश की महिमा को अक्षुण्ण रखने के लिये अनेक नररत्नों को जन्म दिया है। साहित्य, सङ्गीत, कला, नीति, शौर्य, औदार्य एवं समाज-सेवा के क्षेत्रों में जिस प्रकार वहां के नर-नारियों के अपने कीर्तिमान स्थापित किये हैं, वैसे ही भगवद्भक्ति, योगसाधना और शाक्त-उपासनाओं में भी विभिन्न उज्ज्वल कीर्तिमान स्थापित होता रहा हैं। इसी परम्परा में जिला साबरकांठा के सुविख्यात ग्राम 'मुडेटी' में श्रीयुत पं० रमानाथ जी शास्त्री का जन्म हुआ। आपके पूर्वज चिरकाल से

दशमहाविद्या के सिद्ध उपासकों के रूप में सम्मान्य रहे। उसी परम्परा में श्री शास्त्री-जी के पूज्य पिता श्री पं० मणिशङ्कर दामोदर शुक्ल विद्या-विनय-सम्पन्न, ब्रह्मण्य, कर्मनिष्ठ एवं आर्यमर्यादाओं के उन्नायक विद्वान् के रूप के प्रसिद्ध थे। आपके शुक्ल परिवार का सम्मान तत्कालीन राजा-महाराजाओं में भी पर्याप्त था। संवत् १६७८ की आश्विन शुक्ल प्रतिपदा (दि० ११-१०-१६२३ ई०) को श्री शास्त्रीजी के जन्म से शुक्लकुल अत्यन्त आनन्दित हुआ और प्रातिपदिक चन्द्र के आह्लाद से आह्लादित सारा परिवार बालक रमानाथ की बढ़ती कलाओं से पुलकित हो उठा।

बाल्यावस्था में मुडेटी में ही विद्याभ्यास आरम्भ हुआ तथा उपनयन-संस्कार के पश्चात् वर्णाश्रम की व्यवस्था के अनुसार सिद्धपुर के **'वैदिक संस्कृत महाविद्यालय'** में रहकर दार्शनिकशिरोमणि, पं० **श्री जयदत्त शास्त्रीजी** के सांनिध्य में साहित्य, व्याकरण तथा दर्शनशास्त्रों का प्रायः १० वर्ष तक अध्ययन करके अपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। तदनन्तर पितृपरम्परागत बम्बई में रहनेवाले गुगली-ब्राह्मणोंके कुलपुरोहित के रूप में बम्बई पहुंच कर कुछ समय वह कार्य संभाला किन्तु आपने कुलसंस्कारों के अनुरूप आपकी रुचि ने परम्परागत साधना के विचारों की प्रबलता के कारण उस याज्ञिक वृत्ति से हटाकर आपको साधना के मार्ग में प्रवृत्त कर दिया। परिणामतः सद्गुरु की प्राप्ति के द्वारा अन्तःकरण के उल्लास की पूर्ति के लिये अनेक तीर्थस्थानों में भ्रमण आरम्भ किया। सद्भाग्यवश आदिनाथ के अवतार-स्वरूप, राष्ट्रगुरु, **महामहोपाध्याय, वेदवाचस्पति, श्री १०८ स्वामी माधवानन्दनाथ जी** के सांनिध्य एवं निर्देशन में रहकर, योगाभ्यास तथा दैवी-साधना के अनेक गूढ़ तत्त्वों का आपने क्रमशः ज्ञान प्राप्त किया।

'अन्तर्यागविधिं कृत्वा बहिर्यागं समाचरेत्' इस सिद्धान्त के अनुसार बहिर्याग की साधना के लिये नेपाल के राजर्षि विश्वविजयी, कुल-शिरोमणि, ले० ज० श्री धनशम्शेर जंगबहादुर राणासाहब से परिचय प्राप्त कर उनसे तन्त्र के गूढ रहस्यों को समझा। श्रीराणा साहब की आज्ञानुसार ही आपने टिहरी गढवालनिवासी राजगुरु, कुलमार्तण्ड पण्डित योगीन्द्रकृष्ण दौर्गादत्ति शास्त्री जी द्वारा उन्मत्तभैरवोपासित हादिहंसनवक्रम-युक्त षडाम्नाय की वीराचार से दीक्षा ग्रहण की। तदनन्तर दक्षिणाम्नाय, अधराम्नाय तथा उत्तराम्नाय का क्रम चल रहा था, किन्तु उन्हीं दिनों भाग्यवशात् महामाया की अलौकिक गति के अनुसार पू० श्री शास्त्रीजी का मणिपुरधामवास हो गया। तब अग्रिम क्रम अर्थात् पश्चिमाम्नाय और उत्तराम्नाय की पूर्ति के लिये, जिनकी आज्ञा से आपने उपासनाक्रम आरम्भ किया था, उन्हीं श्रीराणा साहब से मांग की, किन्तु स्वयं क्षत्रिय होने के कारण 'पूजनीय ब्राह्मण को मेरे द्वारा दीक्षा नहीं दी जा सकती' ऐसा सोचकर श्रीराणा सा० ने कृपापूर्वक अपनी धर्मपत्नी **रानी साहिबा श्रीरूपदिव्येश्वरी** (जो कि स्वयं शाक्त-सम्प्रदायकी पूर्ण ज्ञाता हैं) के द्वारा पश्चिमाम्नाय तथा उत्तराम्नाय की दीक्षा का क्रम दिलवा कर श्रीशास्त्रीजी पर पूर्ण कृपा की। तब से

श्री शास्त्रीजी ने अपनी साधना को उत्तरोत्तर दिव्य बनाया है। मुडेटी में 'शक्तिपीठ' की स्थापना करके अनेक जिज्ञासु साधकों को मार्गदर्शन दिया है और महानगरी बम्बई, अहमदाबाद तथा अन्यान्य नगरों में लोककल्याण की कामना से एक विशाल साधक-वर्ग को उपदेश देकर साधनामार्ग में प्रवृत्त भी किया है।

आप पर नेपाल के विश्वविजयी, कुलशिरोमणि, राजर्षि श्री धनशम्शेरजंग बहादुर राणा सा० की अपार कृपा थी। श्रीराणा साहब ने अपने बहुत से लेखों तथा पत्रों में श्रीशास्त्रीजी के बारे में स्पष्टरूप से व्यक्त किया है कि—

'—जो भारतीय उपासना-क्रम को जानने के लिये उत्सुक हों, वे जिज्ञासु-जन 'मुडेटी-पीठाध्यक्ष श्री रमानाथजी शास्त्री' से समाधान प्राप्त करें। क्योंकि मैंने अपना क्रम शास्त्रीजी को दे दिया है। हमने जो गुरुमुखगम्य विद्या प्राप्त की है, उसका हमने शास्त्रीजी को यथायोग्य अधिकारी समझकर प्रदान करने का निश्चय किया है। अन्य किसी को हमने इस तरह का पूर्णक्रम दिया नहीं है। साम्राज्यमेधा तक का क्रम इन्हें प्राप्त है।

मेरी इस अवस्था को ध्यान में रखकर अब आप लोग सब भारत से ही सर्वाम्नाय मन्त्रार्थ, मन्त्र-चैतन्य आदि सब गुरुमुखगम्य विद्या इनसे प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि मन्त्रार्थ, मन्त्र-चैतन्य, उपासना क्रम आदि बिना गुरुमुख के कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सकते हैं। इस कारण अब श्री रमानाथ शास्त्रीजी ही आपको यह सब बता देंगे। यही मेरी आशा है।"

इस कथन से हम श्रीशास्त्रीजी के वैदुष्य और साधना की विशिष्टता का सहज अनुमान कर सकते हैं। श्री शास्त्रीजी के पास प्रत्येक आम्नाय की पूर्ति करनेवाला गूढ-रहस्ययुक्त दशमहाविद्या की साधना-प्रणाली का साहित्य संगृहीत है। अनेक दुर्लभ तान्त्रिक ग्रन्थों का तथा मन्त्रमय स्तोत्रों का आपने स्वयं स्वहस्त से प्रतिलिपि करके प्राचीन पाण्डुलिपियों से सङ्कलन किया है उसी में से यह 'स्तोत्र-षड्रसामृतम्' के रूप में लघुस्तोत्रसङ्ग्रह साधकों के कल्याणार्थ श्रीयुत लेफ्टिनेन्ट जनरल राजर्षि श्रीधनशम्शेर जंगबहादुर राणा साहब की प्रथम पुण्यतिथि पर समर्पित किया है।

हमें विश्वास है कि शक्ति-पीठाध्यक्ष श्रीशास्त्रीजी को प्राप्त विज्ञानपूर्ण तान्त्रिक साधना-साहित्य क्रमशः प्रकाशित कर लुप्तप्राय शाक्तसम्प्रदाय और उसके महत्त्वपूर्ण साहित्य को पुनर्जीवन प्रदान करेंगे।

—डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी

श्रीरमानाथशास्त्रिणां गुरुपरम्परा-वन्दनम्

॥ ॐ नमः शिवाय गुरवे, नाद-बिन्दु-कलात्मने ॥

वागर्थ-प्रतिपत्तये निजगुरुं श्रीस्वेष्टदेवीं परां,
नत्वा विघ्नहरं महागणपतिं श्रीशारदां वाक्प्रदाम् ।
श्रीनाथादिगुरून् प्रणम्य मनसा श्रीमन्त्रराजं परं,
श्रीमच्छ्रीकुलदेवतोपचितये प्रस्तूयते प्रक्रमः ॥१॥

मातरं 'मणिदेवीं' च, पितरं शङ्कराभिधम् ।
स्वान्तःस्थितं भावयेऽहं, वात्सल्योर्जित-विग्रहम् ॥२॥

विद्यागुरुश्री 'जयदत्तशास्त्रि-पादारविन्दं हृदि संस्मरामि ।
यस्य प्रसादान्ननु मादृशस्य, प्रवर्तते वाचि रसप्रवाहः ॥३॥

माधवानन्दनाथं च, योगदीक्षा-गुरुं मम ।
योग्यान् योगे योजयन्तं योगीन्द्रं प्रणमाम्यहम् ॥४॥

बङ्गीयं यतिसम्राजं, वेद-वेदान्त-पारगम् ।
शान्ताश्रमं गुरुं वन्दे, मह्यं ब्रह्मोपदेशकम् ॥५॥

'योगीन्द्रकृष्णं' वन्देऽहं, 'दौर्गादत्ति' गुरुं मम ।
यो मेऽदात् तान्त्रिकीं दीक्षां, 'हादि' क्रमयुतां शुभाम् ॥६॥

नेपालराणा सुकुलां, तन्त्रविद्या-विशारदाम् ।
कादि-विद्याप्रदां मह्यं, रूपदिव्येश्वरीं नुमः ॥७॥

वर्णिनं गुलवणाख्यं, दत्तात्रेयञ्च वामनम् ।
पुण्यपत्तनगं वन्दे, शक्तिपातकरं मयि ॥८॥
योगिराजं समदृशं, सिद्धं नाथाध्वगं गुरुम् ।
वन्दे 'सुन्दरनाथं' तं यो मेऽदाद् यौगिकीं क्रियाम् ॥९॥

रूपदिव्येश्वरीं वन्दे, धनशमशेरमेव च ।
नेपालराणाकुलजौ, कादिविद्याप्रदौ गुरू ॥१०॥

श्रीशङ्कराचार्यपदाद् निवृत्तं श्रीजगद्गुरुम् । सत्यमित्रानन्दगुरुं प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥१॥
यत्कृपादृष्टि-संसेकादुत्तरोत्तरमुत्तमम् । आगमज्ञान विज्ञानं मम नित्यं प्रवर्धते ॥२॥

श्रीपरापूजा-प्रकाशस्तोत्रम्

(अन्वय-व्याख्या-भाषानुवाद-सहितम्)

मुखं बिन्दुर्मिश्रो ह्यरुण-धवलं बिन्दुयुगकं,
कुचद्वन्द्वं योनिर्भगवति च ते हार्द्धसुकला ।
सुसामास्यं वा ऋग्यजुरुभयकं ते स्तनयुगं,
ततोऽथर्वो[1] योनिस्तव जननि हे मन्मथकले ॥१॥

अन्वयः—हे भगवति जननि मन्मथकले ! मिश्रः बिन्दु (एव) तव मुखं (अस्ति), अरुणधवलं बिन्दुयुगकं हि (तव) कुचद्वन्द्वं (अस्ति), ते योनिः हार्द्धसुकला च (अस्ति)। (यत्) तव आस्यं वै (तत्) सुसाम (अस्ति), यत् ते स्तनयुगं (तत्) ऋग्यजुरुभयकं (अस्ति)। ततः तव योनिः अथर्वः (अस्ति)।

व्याख्या—हे भगवति षडैश्वर्यवति, जननि मातः। मन्मथकले कामकले ! मिश्रबिन्दुः सूर्यबिन्दुः। तव ते। मुखं वक्त्रं (अस्ति)। अरुणधवलं बिन्दुयुगकं अग्नीषोम-बिन्दुयुग्मं। हि। (ते) कुचद्वन्द्वं स्तनयुगलं (अस्ति)। ते योनिः भगं। हार्द्धसुकला हार्द्धकला सा च गुरुमुखादेवावगन्तव्या—अस्ति इति शेषः। (एवं) यत् (तव) आस्यं मुखं। तत् वै सुसाम सामवेदः (अस्ति)। (यत्) ते तव। स्तनयुगं कुचद्वयं। (तद्) ऋग् ऋग्वेदश्च यजुः यजुर्वेदश्च तयोः उभयकं युग्मं (अस्ति)। ततः तदनन्तरं। तव ते। योनिः भगं। अथर्वः अथर्ववेदः। अस्ति इति शेषः। तस्मात् कारणात् परदेवतात्रिबिन्दु-चतुर्वेदानां भेदो नास्ति इति सारांशः। योनिरेव त्रिकोणं इत्यभिप्रायः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"ऐकारोद्ध्वर्गतो बिन्दुर्मुखं भानुरधोगतम् ।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिर्हार्द्धकला भवेत् ॥
बिन्दुं सङ्कल्प्य वक्त्रन्तु तदधस्तात् कुचद्वयम् ।
तदधः सपरार्धन्तु चिन्तयेत्तदधोमुखम् ॥
अग्रबिन्दुपरिकल्पिताननामन्यबिन्दुरचितस्तनद्वयीम् ।
नादबिन्दुरचनागुणास्पदां नौमि ते परशिवे परां कलाम् ॥" इति

—आगमवचनम् ॥

---

१. सर्वे नान्ता अदन्ताः स्युरित्युक्तेः ।

"मुखं बिन्दुं कृत्वा कुचयुगमधस्तस्य तदधो,
हकारार्द्धं ध्यायेद् हरमहिषि ते मन्मथकलाम्।
स सद्यः संक्षोभं नयति वनिता इत्यति लघु,
त्रिलोकीमप्याशु भ्रमयति रवीन्दुस्तनयुगाम् ॥१९॥" इति
सौन्दर्यलहर्याम् —श्रीशङ्कराचार्यवचनम्।

भाषानुवाद ,—हे भगवती षडैश्वर्यशालिनी, कामकलारूपिणी माता ! सूर्य-बिन्दु ही आपका मुख है, अरुण तथा श्वेत अग्नि-सोमात्मक बिन्दुयुगल आपके स्तनयुगल हैं और योनि हार्द्ध कला है। एवं (वैदिकदृष्टि से) सामवेद आपका मुख है, ऋग्वेद तथा यजुर्वेद स्तनयुगल हैं और योनि अथर्ववेद है। अतः हे परदेवता, आप में, त्रिबिन्दु एवं चार वेदों में कोई भेद नहीं है ॥१॥

ततः संसारेऽस्मिन् गगनमतुलं शब्दगुणकं,
पुनः स्पर्शाविद्यं पवनमपि रूपञ्च दहनम्।
रसाढ्यं पानीयं तदनु धरणीं गन्धगुणकां,
सुनादब्रह्माख्यौ प्रकृतिपुरुषौ प्राजनयताम् ॥२॥

अन्वयः—ततः अस्मिन् संसारे सुनादब्रह्माख्यौ प्रकृतिपुरुषौ शब्दगुणकं अतुलं गगनम्, पुनः स्पर्शाविद्यं पवनं अपि, रूपं दहनं, रसाढ्यं पानीयं, तदनु गन्धगुणकां धरणीं च प्राजनयताम्।

व्याख्या :—ततः तदनन्तरम्। अस्मिन् एतस्मिन्। संसारे संसृतौ। सुनादब्रह्माख्यौ पूर्वोक्त-कामकलात्मकविसर्गबिन्दुरूपौ। प्रकृतिपुरुषौ विमर्शप्रकाशौ। शब्दः गुणो यस्य तत् श्रोत्रग्राह्यगुणयुक्तं। अतुलं महत्। गगनं नभः। पुनः भूयः। स्पर्शेन स्पर्शगुणेन। आवेद्यः ज्ञेयः तं। पवनं अनिलं। रूपं रूपगुणयुक्तं। दहनं तेजः। रसेन रसगुणेन आढ्यं पूर्णं। पानीयं जलं। तदनु ततः। गन्धगुणकां घ्राणग्राह्यगुणयुक्तां। धरणीं भूमिं। च प्राजनयतां (पूर्वोक्तबिन्दुमथनरूपताण्डवलीलया) जनितवन्तौ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"स्फुरितारुणाद्बिन्दोर्नादब्रह्माङ्कुरो रवो व्यक्तः।
तस्माद् गगनसमीरणदहनोदकभूमिवर्णसम्भूतिः॥
अथ विशदादपि बिन्दोर्गगनानिलानलवारिभूमिजनिः।
एतत् पञ्चक-विकृतिर्जगदिदमरावाद्यजाण्डपर्यन्तम्॥ इति।
—कामकलाविलासवचनम्।

"शब्दस्पर्शौ रूपरसौ गन्धो भूतगणा इमे ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च गुणा व्योमादिषु क्रमात् ।। इति
श्रीपञ्चदशीवचनम् ।

भाषानुवाद :—उसी त्रिकोण से तदनन्तर इस संसार में नाद एवं ब्रह्मरूप पूर्वोक्त कामकलात्मक विसर्ग और बिन्दुरूप प्रकाश-विमर्शात्मक प्रकृति एवं पुरुष ने श्रोत्रग्राह्यगुणयुक्त शब्दरूप से महाकाश, स्पर्शगुण से ज्ञेय वायु, रूपगुण-युक्त रूप से तेजस्, रसगुण-परिपूर्ण रस से जल और प्राणग्राह्यगुण से युक्त गन्ध से पृथ्वी को बिन्दु-मथनरूप ताण्डवलीला से उत्पन्न किया ।।२।।

विमर्शाख्ये शक्ते ! भवसि हि परा त्वं क्षितितले,
महेच्छा पश्यन्ती मणिपुरग-वामा भगवति ।
तथा ज्येष्ठा ज्ञाना हृदयगमना मध्यमशिवा,
क्रियाशक्ती रौद्री मुखकुहरगा वैखरिकला ।।३।।

अन्वयः —हे भगवति ! विमर्शाख्ये ! शक्ते ! त्वं हि क्षितितले परा भवसि । मणिपुरगवामा महेच्छा पश्यन्ती (भवसि) । तथा हृदयगमना ज्ञाना ज्येष्ठा मध्यम-शिवा (भवसि) । तथा मुखकुहरगा क्रियाशक्तिः रौद्री वैखरिकता (भवसि) ।

व्याख्या :—हे भगवति विमर्शाख्ये शक्ते (शब्दोच्चारण-समये) । त्वं हि (एका एव) । (यदा) क्षितितले मूलाधारचक्रे (स्फुरसि इति शेषः) (तदा) परा परासंज्ञका नाडीरूपा भवसि जायसे । (तथैव) मणिः मणिपूरकचक्रं । पुरमिव तस्मिन् नाभिचक्रे गच्छति या सा नाभिस्थानप्राप्ता सा चासौ वामा । महेच्छा इच्छाशक्तिः (भूत्वा) । पश्यन्ती तन्नाम्नी । भवसि । तथा तथैव हृदये गमनं यस्याः सा हृदयप्राप्ता । ज्ञानशक्तिः ज्येष्ठा । भूत्वा । मध्यमा चासौ शिवा मध्यमा इति नाम्नी । भवसि । (तथैव) मुखस्य वदनस्य कुहरं विवरं तस्मिन् गच्छति या सा मुखविवरप्राप्ता । क्रिया-शक्तिः (भूत्वा) । रौद्री । वैखरी एव वैखरिका तस्याः भावः वैखरिकता वैखरीति नामधेया । भवसि इति शेषः ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

२ "इच्छाशक्तिस्तदा सेयं पश्यन्ती वपुषा स्थिता ।
3 ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता ।।
ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा ।
तत्संहृतिदशायान्तु बैन्दवं रूपमास्थिता ।।

प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गाटवपुरुज्ज्वला ।
क्रियाशक्तिस्तु रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा ।" इति

—श्रीवामकेश्वरतन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :—हे विमर्शाख्या भगवती, शब्दोच्चारण के समय आप अकेली ही जब मूलाधार चक्र में स्फुरित होती हैं तब परा-संज्ञक नाडीरूप बन जाती हैं। मणिपूर में जब पहुंचती हैं तो इच्छाशक्ति वामा बनकर पश्यन्ती रूप धारण करती हैं। उसी प्रकार हृदय—अनाहत चक्र में जब गमन करती हैं तो ज्ञानशक्ति ज्येष्ठा बनकर मध्यमा रूप धारण करती हैं और मुख-विवर में जब प्राप्त होती हैं तो क्रियाशक्ति रौद्री बनकर वैखरी नामवाली बनती हैं ॥३॥

पुरोक्तेच्छाशक्तिस्त्रिपुरललिता हादिमतगा,
महोग्रा ज्ञानाख्या जगति विदिता सादिमतगा ।
क्रियाशक्तिः काली कलन-निरता कादिमतगा,
परे ! एकैव त्वं जयसि मतभेदैस्त्रिपुरयुक् ॥४॥

अन्वयः —हे परे ! त्वं एका एव पुरोक्ता इच्छाशक्तिः (सती) हादिमतगा त्रिपुरललिता (भूत्वा) ज्ञानाख्या (सती) जगति विदिता सादिमतगा महोग्रा (भूत्वा) क्रियाशक्तिः (सती) कादिमतगा काली (भूत्वा), एवं मतभेदैः त्रिपुरयुक् जयसि ।

व्याख्याः —हे परे ! त्वं ! एका केवला एव। पुरा पूर्वं । उक्ता कथिता इच्छाशक्तिः (यदा इच्छारूपिणी भवसि तदा इत्यर्थः) हादिमतगा हादिक्रमसमष्टि-रूपिणी । त्रिपुरललिता त्रिपुरसुन्दरी । भवसि । ज्ञानाख्या ज्ञानशक्तिः (यदा ज्ञान-रूपिणी भवसि तदा इत्यर्थः) जगति लोके। विदिता ज्ञाता। (महाचीनक्रमयुतसंवरो-धिमतेन प्रसिद्धा इत्यर्थः।) सादिमतगा सादिक्रमसमष्टिरूपिणी । महोग्रा महोग्रतारा (भवसि) क्रियाशक्तिः (यदा क्रियारूपिणी भवसि तदा इत्यर्थः) कलने स्थितिकरणे निरता तत्परा "कालसङ्कलनात् काली" इत्यभिप्रायः। काली (भवसि)। एवं मतभेदैः कादि-सादि-हादिक्रमभेदैः। त्रीणि च तानि पुराणि शरीराणि तैः युक् युक्ता। जयसि सर्वोत्कर्षेण वर्तसे ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

"कालसङ्कलनात् काली कालग्रासं करोत्यतः । इति

श्रीकामधेनुतन्त्रवचनम् ।

ब्राह्मी रौद्री वैष्णवीति शक्तयस्तिस्र एव हि ।
पुरं शरीरं यस्याः सा त्रिपुरेति प्रकीर्तिता ।" इति

सुन्दरीस्तववचनम् ।

"उग्राऽऽपत्तारिणी यस्मादुग्रतारा प्रकीर्तिता ।।" इति
श्रीमत्स्यसूक्तवचनम् ।

"सुन्दरी तारिणी काली क्रमदीक्षाऽभिगामिनी ।
क्रमदीक्षायुतो देवी क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति ।।
सुन्दरी-हादि विद्या च सादिविद्या च तारिणी ।
कादिविद्या गुह्यकाली मतत्रयविभिन्नता ।।
प्रकारनवकैर्भिन्ना क्रमदीक्षा विमुक्तदा ।
विद्याक्रमं तथा काद्याम्नायोक्तक्रमगं शिवे ।।
हाद्याम्नायोक्तं क्रमं हादिपञ्चक्रमं तथा ।
कादिनवक्रमं चैव हादिनवक्रमं तथा ।।
सादिक्रमं संवरौधिमतं चीनसमुद्भवम् ।
महाक्रमं तथा पूर्णक्रमं सर्वोत्तमोत्तमम् ।।
गुह्याद् गुह्यतरं सर्वक्रमदीक्षाविधिं शृणु ।
सर्वाम्नायप्रभेदेन षड्धा विद्याक्रमं स्मृतम् ।। इति
श्रीबृहद्वडवानलतन्त्रवचनम् ।

"कादिकालीतिशक्ती स्तः पुरा तत्तन्मते मया ।
प्रोक्ते तन्त्रे कादिकाली-मताख्ये तेन नामतः ।। इति
श्रीतन्त्र राजवचनम् ।

सुन्दरी तारिणी काली क्रमदीक्षाभिगामिनी ।
क्रमपूर्णो महेशानि क्रमाच्छम्भुर्भविष्यति ।।
चन्द्राग्नि-पक्ष-षोढाख्य परा निर्वाणतत्परा ।
षट्शाम्भवं ततो देवि चक्रखम्भेदमेव च ।
स्वचक्रदेहविज्ञानं परकायप्रवेशनम् ।।
एतज्ज्ञानात् भवेन्मेधादीक्षा प्रोक्ता मया तव ।।
हादाविदं निगदितं शृणु कादौ महेश्वरि ।। इति
श्रीशक्तिसङ्गमतन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :—हे भगवती परा ! आप जब पूर्वोक्त इच्छारूपिणी होती हैं तब हादिक्रमसमष्टिरूपिणी त्रिपुरसुन्दरी होती हैं। जब ज्ञानरूपिणी बनती हैं तब संसारमें महाचीनक्रमयुत संवरौधिमत से प्रसिद्ध सादिक्रमसमाष्टिरूपिणी महोग्रतारा बनती हैं, और जब क्रियारूपिणी होती हैं तो स्थिति करने में तत्पर कादिक्रमसमष्टिरूपिणी काल-संकलनकर्त्री काली बनती हैं। इस प्रकार आप अकेली ही कादि, सादि और हादि-क्रम भेद से तीन पुररूप शरीरवाली त्रिपुरसुन्दरी के रूप में जय को प्राप्त होती रहती हैं ।।४।।

त्रिविद्यानां नूनं ख-पवन-कृशान्वब्वसुमती—
समेतानां जातास्तनव इह षड्धा भुवनगाः।
प्रजातं षट्चक्रं शुभमपि सहस्रार-सहितं,
षडाम्नायात्मा त्वं रस-तनुधराऽभूर्हि ललिते ।।५।।

अन्वय :— हे ललिते ! इह खपवनकृशान्वब्वसुमतीसमेतानां त्रिविद्यानां भुवनगाः षड्धाः तनवः नूनं जाताः। सहस्रारसहितं शुभं षट्चक्रं अपि जातम्, त्वं हि रसतनुधरा षडाम्नायात्मा अभूः ।

व्याख्या :—हे ललिते ब्रह्मस्वरूपपिणि शक्ते ! इह अस्मिन् जगति। खञ्च गगनञ्च, पवनश्च वायुश्च, कृशानुश्च, तेजश्च आपश्च जलानि च, वसुमती भूश्च, ताभिः समेतानां युक्तानां । त्रिविद्यानां कादि-हादि-सादि-विद्यानां । भुवने गच्छतीति भुवनगाः जगद्व्याप्ताः । षड्ध्रा षट्प्रकाराः । तनवः मूर्तयः। नूनं ध्रुवं जाताः । षडाम्नायविद्याः जाताः । सहस्रारेण सहस्रदलचक्रेण सहितं युक्तम् सहस्राराधिकम्। शुभं शोभनं। षण्णां समाहारः चक्र--मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाख्यषट्चक्रम् । अपि (खपवन-कृशान्वब्वसुमतीसमेताभ्यः त्रिविद्याभ्यः) प्रजातं उत्पनम्। (ततः) त्वं। हि निश्चयेन। रसाः षट्च ताः तनवः शरीराणि तासां धरा धारणकर्त्री। षडाम्नायात्मा षडाम्नायरूपा । अभूः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्

एका सा परमा देवी विश्वं व्याप्य व्यवस्थिता ।
चतुर्विंशतितत्त्वेन ब्रह्माण्डं चेतयेदिह ।।
पृथिवीवायुराकाशजल-वह्निमयं वपुः ।।
धृत्वा संसृज्यते विश्वं कल्पे कल्पे यथेच्छया ।।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः ।
पञ्चभूतात्मकं चैव शरीरं पञ्चसंस्कृतम् ।।
एकीकृत्य तथा पञ्चभूतरूपेण संस्थिताः ।
निर्जीवा जीवरूपेण पञ्चभूतत्वमागताः ।।
सिंहासनमहाम्नाय-पञ्चभूतानि सङ्गमः ।
आद्या सा परमा शक्तिर्व्योमस्था कुलरक्षिणी ।।
ब्रह्माण्डव्यापिनी नित्या परब्रह्मस्वरूपिणी ।
चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सर्वजीवस्वरूपिणी ।।
ब्रह्मस्वरूपिणी साक्षात् स्त्रीपुंम्भेदेन भिद्यते ।
लीलया क्रीडते नित्या ललितारूपधारिणी ।।

अरूपा रूपवान् भूत्वा पुंरूपं धार्य्यते शिवे।
कदाचिल्लीलया देवी मायारूपेण क्रीडति॥
कदाचिद्धरिरूपेण शिवरूपेण स्वेच्छया।
ब्रह्मरूपधरा माया स्वेच्छारूपधरा परा॥
एषा परापरा देवी प्रकृतिर्विश्वमोहिनी।
प्रवर्तयति संसारं समयापालनाय च॥
श्रीनाथक्रमसिद्ध्यर्थं षडाम्नायत्वमागता।
षट्सिंहासनगां देवीं समासं कथयामि ते॥" इति-

—श्रीपरातन्त्रवचनम्।

भाषानुवाद :—हे ब्रह्मस्वरूपिणी शक्ति श्री ललितादेवी! इस संसार में आकाश, वायु, अग्नि, जल, तथा पृथ्वी से युक्त कादि हादि सादि-रूप तीन विद्याओं से ही जगत् में व्याप्त छह प्रकार की मूर्तियां बनी हैं। वे ही षडाम्नायविद्याएं बनीं। तथा सहस्रारसहित सुन्दर षट्चक्र (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञारूप) बने। इस प्रकार आप निश्चय ही षट्शरीरधारिणी षडाम्नायात्मा हैं ॥५॥

परे! एका सृष्टि-स्थिति-लय-विधाने पुनरहो,
अनाख्या भासायां त्वमसि ललनाचार-निरता।
समालभ्यावस्थां विविधमतभेदोपजनितां,
शनैः पञ्चीभूत्वा विलससि सदैव त्रिभुवने ॥६॥

अन्वयः—हे परे! अहो! त्वं एका (एव) सृष्टिस्थितिलयविधाने पुनः अनाख्याभासायां ललनाचारनिरता असि। (एवं) विविधमतभेदपजनितां अवस्थां समालभ्य शनैः पञ्चीभूत्वा त्रिभुवने सदैव विलससि।

व्याख्या :—हे परे! अहो! त्वं एका केवला। सृष्टिश्च सर्गश्च, स्थितिश्च पालनञ्च, लयश्च संहारश्च, तदेव विधानं कार्यं तस्मिन्। पुनः भूयः। अनाख्यया तिरोधानेन सहिता चासौ-भासा अनुग्रहणं तस्यां। शाकपार्थिवादित्वं कल्पनीयम्। ललनायाः क्रीडायाः आचारः तस्मिन् निरता। असि भवसि। एवं विविधैः पूर्वोक्त-सृष्टिस्थितिसंहारानाख्याभासाभिः मतभदैः उपजनितां प्रापितां। अवस्थां अवस्थितिं समालभ्य सम्प्राप्य। शनैः क्रमेण। अपञ्च पञ्च यथा सम्पद्यन्ते तथाभूत्वा। त्रिभुवने त्रिलोके। सदैव सर्वदा। विलससि विभासि।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"सृष्टेरादौ त्वमेकाऽऽसीत् तमोरूपमगोचरम्।
त्वत्तो जातं जगत् सर्वं परब्रह्मसिसृक्षया॥

महत्तत्वादिभूतान्तं त्वया सृष्टमिदं जगत् ।
निमित्तमात्रं तद्ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥
सद्रूपं सर्वतोव्यापि सर्वमावृत्य तिष्ठति ।
सदैकरूपं चिन्मात्रं निर्लिप्तं सर्ववस्तुषु ॥
न करोति न चाश्नाति न गच्छति न तिष्ठति ।
सत्यं ज्ञानमनाद्यन्तमवाङ्मनसगोचरम् ।
तदिच्छामात्रमालम्ब्य त्वं महायोगिनी परा ।
करोषि पासि हंस्यन्ते जगदेतच्चराचरम् ॥
तव रूपं महाकालो जगत्संहारकारकः ।
महासंहारसमये कालः सर्वं ग्रसिष्यति ॥
कलनात् सर्वभूतानां महाकालः प्रकीर्तितः ।
महाकालस्य कलनात् त्वमाद्या कालिका परा ॥
कालसङ्ग्रसनात् काली सर्वेषामादिरूपिणी ।
कलात्वादादिभूतत्वादाद्याकालीति गीयते ॥
पुनः स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृतिः ।
वाचातीतं मनोगम्यं त्वमेकैवाऽवशिष्यसे ।
साकाराऽपि निराकारा मायया बहुरूपिणी ।
त्वं सर्वादिरनादिस्त्वं कर्त्री हर्त्री च पालिका ॥" इति

—श्रीमहानिर्वाणतन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :—हे परे ! आश्चर्य है कि आप अकेली ही सृष्टि, स्थिति और लय-संहार-विधान में तथा अनाख्या-तिरोधान एवं भासा-अनुग्रह आदि कार्यों में ललनोचित क्रीडा में तत्पर रहती हैं। तथा उपर्युक्त पञ्चविध अवस्थाओं से रहित होकर भी पञ्चविध अवस्थाओं को प्राप्त करके तीनों लोकों में सदा शोभित होती हैं ॥६॥

१—पूर्वाम्नायः

रसारं तद्बाह्ये शुभवसुदलाढ्यं सुकमलं,
सरोजान्यद् दिव्यं विधुदलयुतं तद् बहिरथो ।
चतुर्द्वारोपेतं विलसति यदा यन्त्रमतुलं,
तदा त्वं भो मातर्भवसि भुवनेशी हरनुते ॥७॥

अन्वयः—भोः हरनुते मातः ! यदा रसारं तद्वाह्ये शुभवसुद्लाढयं सुकमलं तद्बहिः विधुदलयुतं दिव्यं सरोजान्यद् अथो चतुर्द्वारोपेतं अतुलं यन्त्रं विलसति तदा त्वं भुवनेशी भवसि ।

व्याख्या :—भोः हरनुते शिवनमिते! मातः जननि ! यदा यस्मिन् समये। रसारं षट्कोणं। तद्बाह्ये तद्बहिः। शुभवसुदलाढ्यं रुचिराष्टदलयुतं। सुकमलंपद्मं। तद्बहिः तद्-बाह्ये। विधुदलयुतं षोडशपत्रयुतं। दिव्यं सरोजान्यद् अपरकमलं। अथो तद्बाह्ये। चतुर्द्वारो-पेतं भूपुरयुतं। अतुलं उत्तमं। यन्त्रं चक्रं। विलसति। पूर्वोक्त-बिन्दुयुगलस्य उच्छलनात् एतादृशं यन्त्ररूपं भवति इत्यर्थः। तदा तस्मिन्समये। त्वं भुवनेशी भुवनेश्वरीरूपा भवसि। तस्मात् कारणात् मूर्तियन्त्रयोर्भेदो नास्ति इत्याशयः। एतद्यन्त्रस्य अष्टदल-षोडशदलभूपुरचक्राणि श्वेतबिन्दुभागा भवन्ति। षट्कोणचक्रं च रक्तबिन्दुभागो भवति। बिन्दुयुगलात् सृष्टिर्भवति। तस्मात् कारणात् सृष्ट्याम्नाययन्त्रे बिन्दुद्वयभागा एव भवन्ति। यतः सकलपूर्वाम्नायात्मकचक्राणां पद्मभूपुरादिकाः श्वेतबिन्दुभागाः कोणादिकाः रक्तबिन्दुभागाः भवन्ति। इति यन्त्रसङ्केतः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

पद्ममष्टदलं बाह्ये वृत्तं षोडशभिर्दलैः।
विलिखेत्कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम्॥
चतुरस्त्रं चतुर्द्वारमेवं मण्डलमालिखेत्।
एवं श्रीभुवनेश्वर्या यन्त्रराजो भवेच्छिवे॥"

[इति भुवनेश्वरीतन्त्रवचनम्।

भाषानुवाद :—भगवान् शिव द्वारा नमस्कृत हे माता ! जब षट्कोण, अष्ट-दलकमल, षोडशदलकमल तथा चार द्वारों से युक्त भूपुरवाला उत्तम यन्त्र पूर्वोक्त बिन्दुयुगल के उच्छलन से बनता है, तब उस समय आप पूर्वाम्नायात्मिका 'भुवनेश्वरी' रूप होती है ॥७॥ (यन्त्र सङ्केत व्याख्या में देखें।)

परे प्रागाम्नाये जगति विदिता राजसवपुः,
शुभाकारा भूत्वा सृजसि भुवना विश्वमखिलम्।
तदा शम्भ्वाकारो भवति स परो धाम-विभव—
स्तयोरंशोत्पन्नो विधिरपि स सृष्टिं वितनुते ॥८॥

अन्वयः — हे परे! प्रागाम्नाये (त्वं) जगति विदिता शुभाकारा राजसवपुः भुवना भूत्वा अखिलं विश्वं सृजसि, तदा सः धामविभवः परः शम्भ्वाकारः भवति। तयोः अंशोत्पन्नः सः विधिः अपि सृष्टिं वितनुते।

व्याख्या :—हे परे! प्रागाम्नाये। जगति लोके। विदिता प्रसिद्धा। शुभः शोभनः आकारः आकृतिः यस्याः सा। राजसम् वपुः शरीरं यस्याः सा रजोगुणयुक्तशरीरा। भुवना भुवनेश्वरीरूपा। भूत्वा। अखिलं निखिलं। विश्वं जगत्। सृजसि सर्गं करोषि।

तदा तस्मिन् काले । धामविभवः तेजःपुञ्जरूपः । स परः । शम्भ्वाकारः पशुपतिरूपः । भवति तयोः भुवनेश्वरीपशुपत्योः अंशात् उत्पन्नः अंशजातः । सः । विधिः ब्रह्मा । अपि । सृष्टिं सर्गं । वितनुते करोति ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

त्वं तु कपालिनी भूत्वा मामपृच्छः षडन्वयम् ।
प्रथमं पूर्ववक्त्रेण रूपं तत्पुरुषेण च ॥
कथयामास प्राची तु सिंहासनमहोद्गतम् ।
नायिका रुद्रशक्तिर्या शिवत्वपुरुषं परम् ॥" इति ।

—श्रीपरातन्त्रवचनम् ।

"पूर्व्वाम्नायः सृष्टिरूपः स्थितिरूपश्च दक्षिणः
संहारः पश्चिमो देवि उत्तरोऽनुग्रहो भवेत् ॥" इति

—कुलार्णवतन्त्रवचनम् ।

"एकैवाऽऽद्या जगत्सूतिः सच्चिदानन्दविग्रहा ।
तत्तद्विभूतिभेदेन भिन्नाऽनेकत्वमागता ॥
पूर्णेशी भुवनेशानी ललिता चापराजिता ।
लक्ष्मीः सरस्वती वाणी पारिजातपदाङ्किता ।
अन्नपूर्णा जयाद्याश्च पूर्वाम्नायसमाश्रिताः ॥" इति

—श्रीवडवानलतन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :—हे परा भगवती ! जब आप पूर्वाम्नाय में सुप्रसिद्ध सुन्दर आकार से रजोगुणयुक्त शरीरवाली भुवनेश्वरी बनकर अखिल विश्व की सृष्टि करती हैं, तब तेजःपुञ्जरूप वह परशिव पशुपतिरूप होता है, और उन भुवनेश्वरी एवं पशुपति के अंश से उत्पन्न वह ब्रह्मा भी सृष्टि की रचना करता है ॥८॥

सुपूर्वे राजीवे स्मितमुखसरोजां पृथुकुचां,
शिवाकारां शान्तां तरुणरविभासं हरवधूम् ।
कराम्भोजैः पाशाङ्कुशवरमहाभीति-दधतीं,
भजेऽहं रत्नाङ्गीं शशधरधरां रम्यभुवनाम् ॥९॥

अन्वय :—सुपूर्व्वे राजीवे स्मितमुखसरोजां पृथुकुचां शिवाकारां शान्तां तरुणरविभासं हरवधूं कराम्भोजैः पाशाङ्कुशवरमहाभीतिदधतीं रत्नाङ्गीं शशधरधरां रम्यभुवनां अहं भजे ।

व्याख्या :—सुपूर्व्वे राजीवे पद्मे पूर्वाम्नाये । स्मितं ईषद्धास्ययुक्तं मुखं आननं सरोजं कमलमिव यस्याः सा तां । पृथु विशालौ कुचौ स्तनौ यस्याः सा ताम् । शान्तां

सौम्यां। तरुणः युवा स चासौ रविः सूर्यः तस्य भा इव भाः कान्तिर्यस्या सा तां। हरस्य पशुपतेः वधूः प्रिया तां। कराः हस्ताः एव अम्भोजानि कमलानि तैः। पाशश्च रज्जूः बन्धनं च अङ्कुशश्च सृणिश्च वरं च वरदमुद्रा च महाभीतिः अभयमुद्रा च ताः दधतीं दधानां। रत्नानि रत्नखचितभूषणानि अङ्गेषु करचरणादिषु यस्याः सा तां। शशधरधरां चन्द्रशेखरां। रम्या रुचिरा चासौ भुवना भुवनेश्वरी तां। अहं। भजे सेवे।

निर्गुणभावे—स्मितमुखसरोजां नित्यानन्दरूपिणीं पृथुकुचां बिन्दुद्वयेन सृजतीति पूर्वमेवोक्तं तस्मात् अत्र पृथुकुचद्वयेन महादेवीं संसाररचनोद्यतामिति सूचितम्। शिवाकारां सकलजगतां कल्याणरूपिणीं। शान्तां सकलजगतां शान्तिदायिनीं। यथा तरुणरविः नूतनदिवस सृजति, तथैव पूर्वाम्नायात्मिका भगवती नूतनसंसारं सृजति तस्मात् तरुणरविभासं विश्वकर्त्रीमित्यर्थः। हरवधूं तापत्रयं हरतीति हरः तस्य वधूः शक्तिः स्वीयसाधकानां तापत्रयहारिणीमित्यर्थः। पाशः वशीकरणशक्तिः। अङ्कुशः स्तम्भनशक्तिः तस्मात् पाशाङ्कुशवरमहाभीतिदधतीं सकलभुवनं निजमायावशमानीय तदिच्छां विना चलनासम्भवात् स्वीयसाधकानामभिलषितवरं दत्त्वा तेभ्योऽभयं ददतीमिति भावः। शशधरधरां परमामृतरूपिणीं। रम्या मनोहरा चासौ भुवना (भुवन+आप्) तां सकलभुवनशक्ति मूलप्रकृतिमिति भावः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥" इति
आगमवचनम्।

भाषानुवाद :—(सगुण भावात्मक अर्थ)

पूर्वाम्नाय में मन्दमुस्कान से युक्त मुखकमलवाली, विशाल स्तनशालिनी, शिवस्वरूपा, शान्त, तरुण सूर्य के समान कान्तिमती, भगवान् शिव की प्रिया तथा अपने (चारों) करकमलों से क्रमशः पाश, अंकुश, वरदमुद्रा तथा अभयमुद्रा को धारण करने वाली, रत्नों से जटित, आभूषणों से मण्डित एवं मुकुट में चन्द्रमा को धारण करने वाली उस भुवनमोहिनी भगवती भुवनेश्वरी की मैं आराधना करता हूं।

भाषानुवाद :—(निर्गुण भावात्मक अर्थ)

नित्यानन्दरूपिणी, बिन्दुद्वयरूप स्तनोंवाली, संसार की रचना में उद्यत, सकल जगत् के लिए कल्याणस्वरूप, शान्तिप्रदायिनी, जिस प्रकार तरुण सूर्य नवीन दिवस की सृष्टि करता है उसी प्रकार तेजस्वी विश्व का निर्माण करनेवाली, तापत्रयनाशक भगवान् हर-शिव की शक्तिरूपा, अपने साधकों के तापत्रय को दूर करने वाली, पाश वशीकरण शक्ति एवं अंकुश-स्तम्भन शक्ति से समस्त भुवन को अपने वश में करके

साधकों को अभिलषित वर एवं अभय देने वाली परामृतरूपिणी रमणीय उस मूल प्रकृति का मैं स्मरण करता हूं ॥९॥

त्रिकोणं वह्न्यस्रत्रयमपि बहिस्त्र्यस्रमपरं,
बहिः पद्मं दिव्यं वसुदलयुतं भूमि-सदनम् ।
शिरःपङ्क्तिज्वालैः सह भवति यन्त्रं सुविमलं,
तदा श्यामाकाली त्वमसि परमाद्ये भगवति ॥१०॥

अन्वयः— हे परमाद्ये भगवति ! त्रिकोणं वह्न्यस्त्रत्रयं अपि बहिः अपरं त्र्यस्रं बहिः वसुदलयुतं दिव्यं पद्मं भूमिसदनं शिरःपंक्तिज्वालैः सह सुविमलं यन्त्रं यदा भवति तदा त्वं श्यामाकाली असि ।

व्याख्याः —हे परमाद्ये भगवति ! त्रिकोणं त्र्यस्रं । वह्न्यस्त्रत्रयं त्रिकोणत्रयं अपि । बहिः तद्बाह्ये । अपरं अन्यत् । त्र्यस्रं त्रिकोणं । (एवं पञ्चत्रिकोणमित्यर्थः) । बहिः तद्बाह्ये । वसुदलयुतं अष्टपत्रयुक्तं । दिव्यं रुचिरं । पद्मं कमलं । (तद्बाह्ये) । भूमिसदनं भूपुरं । शिरःपंक्तिः च मुण्डपङ्क्तिः च ज्वालाश्च अग्निशिखाश्च ताभिः सह वर्तमानमिति शेषः । सुविमलं निर्मलं । यन्त्र चक्रं । भवति (यदा पूर्वोक्त-बिन्दुत्रयं एतद्रूपतां याति इत्यर्थः) । तदा । श्यामाकाली दक्षिणकालीरूपिणी । असि भवसि । एतद्यन्त्रस्य पञ्चत्रिकोणानि रक्त-बिन्दुभागाः अष्टपत्रकमलं च श्वेतबिन्दुभागः, भूपुराग्निज्वालामुण्डपङ्क्तयश्च मिश्रबिन्दुभागाः भवन्ति । पूर्वोक्तबिन्दुत्रयात् स्थितिर्भवति । तस्मात् कारणात् स्थित्याम्नाययन्त्रे बिन्दुत्रयभागाः भवन्ति । यतः सकल-दक्षिणाम्नायचक्राणां पद्मादिकाः श्वेतबिन्दुभागाः कोणादिकाः रक्तबिन्दुभागाः अन्ये भूपुरादिकाः मिश्रबिन्दुभागाश्च भवन्ति । इति यन्त्रसङ्केतः । मतान्तरे कालीयन्त्रं मायागर्भितबिन्दुपञ्चत्रिकोणषट्कोणवृत्ताष्टदलवृत्तभूपुरान्वितं च भवति ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

"त्रिकोणं पञ्चकं चाष्टकमलं भूपुरान्वितम् ।
मुण्डपङ्क्तिश्च ज्वालाश्च काली यन्त्रं सुसिद्धिदम् । इति

—आगमवचनम्

"आदौ त्रिकोणं विन्यस्य त्रिकोणं तद्बहिर्न्यसेत् ।
ततो वै विलिखेन्मन्त्री त्रिकोणत्रयमुत्तमम् ॥
मध्ये तु बैन्दवं चक्रं बीजमायाविभूषितम् ।
षट्कोणात्तु बहिर्वृत्तं ततोऽष्टदलकं न्यसेत् ॥
बहिर्वृत्तेन संयुक्तं भुपुरेकैन संयुतम् ।
ज्ञात्वैव मुक्तिमाप्नोति यन्त्रराजं न संशयः ॥" इति

—कालीतन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :—हे परमाद्या भगवती ! जब पूर्वोक्त बिन्दुत्रय, त्रिकोण, उसके बाहर तीन त्रिकोण और उसके बाहर पुनः त्रिकोण इस प्रकार पांच त्रिकोणों के बाहर अष्टदल कमल, तदनन्तर बाहर भूपुर, मुण्डपंक्ति एवं ज्वालाओं से युक्त निर्मल यन्त्र बनता है तब आप श्यामाकालीदक्षिण-कालीरूपिणी बनती हैं।

इस यन्त्र के पञ्चत्रिकोण रक्तबिन्दु के भाग हैं अष्टदलकमल श्वेतबिन्दु का भाग है तथा भूपुर, मुण्डपंक्ति एवं अग्नि-ज्वालाएं मिश्रबिन्दु के भाग हैं। पूर्वोक्त बिन्दुत्रय से स्थिति होती है इसीलिए स्थित्याम्नाय में बिन्दुत्रय के भाग होते हैं। जिनसे समस्त दक्षिणाम्नाय चक्रों के पद्म आदि श्वेतबिन्दुभाग, कोणादि रक्तबिन्दु भाग तथा अन्य भूपुर आदि मिश्रबिन्दुभाग होते हैं। यह यन्त्र संकेत है।

मतान्तर में कालीयन्त्र माया-ह्रीङ्कारगर्भित, बिन्दु, पञ्चत्रिकोण, षट्कोण, वृत्त, अष्टदल, वृत्त एवं भूपुर से युक्त होता है ॥१०॥

२—दक्षिणाम्नायः

ततोऽवाच्याम्नाये त्वमपि परमे सत्त्वगुणका,
महाश्यामा भूत्वा निखिलभुवनं रक्षसि सदा।
महाकालाकारः प्रभवति तदा श्रीपरशिव-
स्तयोरंशोत्पन्नो भरति च जगद्विष्णुरखिलम् ॥११॥

अन्वयः—हे परमे ! ततः अवाची-आम्नाये अपि त्वं सत्त्वगुणका महाश्यामा भूत्वा निखिलभुवनं सदा रक्षसि। तदा श्रीपरशिवः महाकालाकारः प्रभवति। तयोः अंशोत्पन्नः विष्णुः च अखिलं जगत् भरति।

व्याख्या :—हे परमे ! ततः तदनन्तरं। अवाच्याम्नाये दक्षिणाम्नाये। अपि। त्वं। सत्त्वगुणका सत्त्वगुणयुक्ता। महाश्यामा दक्षिणकालीरूपा। भूत्वा। निखिलं सर्वं च तत् भुवनं लोकं। रक्षसि पालयसि। तदा तस्मिन् समये। श्रीपरशिवः प्रकाशैकस्वरूपः। महाकालाकारः महाकालभैरवस्वरूपः। प्रभवति जायते। तयोः दक्षिणकाली-महाकालयोः। अंशोत्पन्नः अंशजातः विष्णुः विश्वम्भरः। च। अखिलं सर्वं। जगत् भुवनं। भरति पालयति।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

दक्षिणाम्नायं वक्ष्यामि महावीर्या महोल्वणा।
अघोर भैरवोच्छिष्टा निशेशी च निलाङ्गना।" इति

—श्रीपरातन्त्रवचनम्।

"निशेशी दक्षिणा काली बगला छिन्नमस्तका।
भद्रा तारा च मातङ्गी दक्षिणाम्नायदेवताः ॥" इति
—श्रीवडवानलतन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :—हे भगवती परमस्वरूपा ! तदनन्तर दक्षिणाम्नाय में भी आप जब सत्त्वगुणयुक्त दक्षिणकालीरूप महाश्यामा बनकर सकल संसार की रक्षा करती हैं, तब श्रीपरशिव महाकाल-भैरवस्वरूप होते हैं तथा आप दोनों के अंश से उत्पन्न विष्णु सारे जगत् का पालन करते हैं ॥११॥

अवाच्यब्जे नौमि स्मरहरशवस्थां त्रिनयनां,
महाश्यामाकालीं जलधरनिभां मुक्तचिकुराम्।
ललज्जिह्वां नग्नां शवकरपरीधानसुकटिं,
नृमुण्डं खड्गञ्चाभयमपि वरञ्चैव दधतीम् ॥१२॥

अन्वयः—अवाच्यब्जे स्मररशवस्थां त्रिनयनां जलधरनिभां मुक्तचिकुरां ललज्जिह्वां नग्नां शवकरपरीधानसुकटिं नृमुण्डं खड्गं च अभयं वरं च एव दधतीं महाश्यामाकालीं नौमि ।

व्याख्या :—अवाच्यब्जे दक्षिणाम्नाये । स्मरहरः शिवः स एव शवः प्रेतः तस्मिन् तिष्ठति या सा । त्रीणि नयनानि नेत्राणि यस्याः सा तां । जलधरो मेघः तेन निभा तुल्या तां । मुक्ताः विकीर्णाः चिकुराः केशाः यस्याः सा तां । ललन्ती चलन्ती जिह्वा रसना यस्याः सा तां । नग्नां दिग्वस्त्रां । शवानां मृतकानां कराः हस्ताः ते एव परीधानं परीधानवस्त्रं तेन सुशोभना कटिः यस्याः तां । नृमुण्डं नरशिरः । खड्गं कौक्षेयकं । अभयं अभयमुद्रां । वरं वरदमुद्रां । अपि । दधतीं बिभ्रतीं । महाश्यामाकालीं दक्षिणकालीं । त्वां । नौमि प्रणमामि ।

निर्गुणभावे—स्मरहरशवस्थां स्मरहरः कामनाशकः स एव शवः तस्योपरि तस्य सत्तारूपेण स्थितां स्वीयसाधकानां कामक्रोधादिविनाशशक्तिमित्यर्थः । त्रिनयनां पूर्वोक्तबिन्दुत्रयसमष्टिरूपिणीं । जलधरनिभां शुद्ध-सत्त्वगुणात्मकत्वात् तथा चिदाकाशत्वाच्च नीलवर्णचिन्तनीयामिति भावः । मुक्तचिकुरां केशविन्यासादिविलास-विकाररहितां निर्विकारामित्यर्थः । ललजिह्वां जिह्वासञ्चालनाद्रजोगुणसूचित-रुधिरधाराद्रवन्तीं रजोगुणरहित-शुद्रसत्त्वात्मिकां विरजामिति भावः । नग्नां वस्त्रमेव मायावरणं तेन शून्यां मायातीतामित्यर्थः । शवकरपरीधानसुकटिं सर्वे जीवाः कल्पावसाने स्थूलदेहान् त्यक्त्वा स्वस्वकर्मभिः सह लिङ्गदेहमाश्रित्य सगुणब्रह्मरूपिण्याः कारणदेहस्य अविद्यामयांशे पुनः कल्पारम्भपर्यन्तं आमोक्षं अवतिष्ठन्ते, अत एव मृत-

जीवानां प्रधानकर्म्मसाधनभूतैः करसमूहैः विराड्रूपिण्याः महादेव्याः गर्भधारण-योग्यनिम्नोदरस्य तथा योनेश्च ऊर्ध्वस्थितकटिप्रदेशे परिधानं कल्पितमिति भावः। स्वीयवामोर्ध्वहस्तेन ज्ञानखड्गेन निष्कामसाधकानां मोहपाशं छित्त्वा तदधोहस्तेन विगतरजं तत्त्वज्ञानाधारं मस्तकं, तथैव दक्षिणोर्ध्वहस्तेन सकामसाधकेभ्यः अभयं तथा तदधोहस्तेन च अभीष्टवरञ्च दधतीमिति भावः। महाश्यामा महासत्त्वगुणात्मिका। क ब्रह्मा आ अनन्तश्च ल विश्वात्मा च ई सूक्ष्मा च तैः युक्ता काली आद्यन्तरहिता इति भावः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"सद्यश्छिन्नशिरःकृपाणमभयं हस्तैर्वरं बिभ्रतीं,
घोरास्यां शिरसां स्रजासुरुचिरामुन्मुक्तकेशावलिम्।
सृक्कासृक्प्रवहां श्मशाननिलयां श्रुत्योः शवालङ्कृतां,
श्यामाङ्गीं कृतमेखलां शवकरैर्देवीं भजे कालिकाम्।।" इति

—आगमवचनम्।

"करालवदनां घोरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजाम्।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुण्डमालाविभूषणाम्॥
खड्गाभयवरैश्छिन्नं मुण्डं च दधतीं करैः।
महामेघप्रभां श्यामां तथा चैव दिगम्बराम्॥
कण्ठावसक्तमुण्डालीं गलद्रुधिरचर्चिताम्।
कर्णावतंसतानीकशवयुग्मविराजिताम्॥
घोरदंष्ट्रां करालास्यां पीनोन्नतपयोधराम्।
शवानां करसङ्घातैः कृतकाञ्चीं हसन्मुखीम्॥
सृक्कद्वयगलद्रक्तधाराविस्फुरिताननाम्।
घोररूपां महारौद्रीं श्मशानालयवासिनीम्॥
दन्तुरां दक्षिणव्यापिमुक्तलम्बकचोच्चयाम्।
शवरूपमहादेवहृदयोपरि संस्थिताम्॥
शिवाभिर्घोररावाभिश्चतुर्दिक्षुसमन्विताम्।
महाकालसमायुक्तां शवोपरि रतान्विताम्॥
सुखप्रसन्नवरदां स्मेराननसरोरुहाम्।
एवं सञ्चिन्तयेत् कालीं श्मशानालयवासिनीम्॥" इति

—मेरुतन्त्रवचनम्।

"कर्म्मणा जायते जन्तुः कर्म्मणैव विलीयते।
देहे विनष्टे तत् कर्म्म पुनर्देहे प्रलभ्यते।" इति

—श्रीमहानिर्वाणतन्त्रवचनम्।

"तस्माद् ज्ञानासिना तूर्णमशेषं कर्म्मबन्धनम्।
कामाकामकृतं छित्त्वा शुद्धश्चात्मनि तिष्ठति।" इति
—शिवधर्मोत्तरवचनम्।

भाषानुवाद :—(सगुणात्मक भावपरक अर्थ)

दक्षिणाम्नाय में शिवरूप शव पर विराजमान, त्रिनयना, मेघ के समान वर्णवाली, खुले हुए केशों से युक्त, चलती हुई जीभवाली, नग्न, शवों के हाथों से ढके हुए कटिभागवाली, नृमुण्ड, खड्ग, अभय और वरदमुद्रा को (अपने चारों हाथों में) धारण की हुई महाश्यामा काली को मैं प्रणाम करता हूं।

(निर्गुणभावात्मक अर्थ)

कामनाशक शव पर सत्ता के रूप में स्थित अपने साधकों के काम-क्रोधादि का विनाश करनेवाली, पूर्वोक्त बिन्दुत्रयसमष्टिरूपिणी, शुद्धसत्त्वगुणात्मक तथा चिदाकाश रूप होने से नीलवर्ण के रूप में चिन्तनीय, केशविन्यासादि विलासरूप विकारों से रहित, रजोगुणरहित शुद्धसत्त्वात्मिका, मायातीत, कल्पावसान में लिङ्गदेह का आश्रय लेकर सभी जीव सगुणब्रह्मरूपिणी भगवती के गर्भधारण योग्य उदर के निम्न भाग तथा योनि के ऊर्ध्वभाग पर अपने मोक्षकी प्राप्ति के लिए मृतजीवों के प्रधानकर्म्मसाधनभूत करसमूहों से आश्रित, अपने वामहस्त से ज्ञानखड्ग के द्वारा साधकों के मोहपाश को काटकर उसके नीचेवाले द्वितीय हस्त से विगतरज, तत्त्वज्ञान के आधारभूत मस्तक को, तथा दक्षिण ऊर्ध्वहस्त से सकाम साधकों को अभय और अधोहस्त से अभीष्ट वर प्रदान करनेवाली महाश्यामा महासगुणात्मिका क-ब्रह्मा, आ-अनन्त, ल-विश्वात्मा तथा ई-सूक्ष्मा इन सबसे युक्त काली को मैं नमन करता हूं ॥१२॥

३—पश्चिमाम्नायः

परे बिन्दुः शुद्धो विमलतरयोन्यन्तरगतो,
बहिः षट्कोणख्यं वसुछदनकं केसरयुतम्।
सरोजं भूचक्रत्रितयमपि दिव्यं सुविमलं,
यदा यन्त्रं भाति त्वमसि हि तदा श्रीकुलकुजा ॥१३॥

अन्वयः—हे परे! विमलतरयोन्यन्तरगतः शुद्धः बिन्दुः। बहिः षट्कोणाख्यं केसरयुतं वसुछदनकं सरोजं भूचक्रत्रितयं अपि दिव्यं यन्त्रं यदा भाति। तदा त्वं श्रीकुलकुजा असि।

व्याख्याः—हे परे! अतिशयेन विमला निर्मलासा चासौ योनिः त्रिकोणं तस्याः अन्तरगतः मध्यस्थितः। शुद्धः स्पष्टः। बिन्दुः बैन्दवचक्रम्। बहिः एतद्बिन्दु-

त्रिकोणाद् बाह्ये। षट्कोणाख्यं षडस्रं। केसरयुतं किञ्जल्कयुक्तं। वसुछदनकं अष्टदल-युतं। सरोजं पद्मं। (तद्बाह्ये)। भूचक्रत्रितयं भूपुरत्रितयं अपि। दिव्यं शोभनं। सुविमलं निर्मलं। यन्त्रं चक्रम्। यदा यस्मिन् काले। भाति प्रकाशते। (पूर्वोक्तमिश्रबिन्दु-रेतद्यन्त्ररूपतां याति इत्यर्थः) तदा तस्मिन् काले। त्वं। श्रीकुलकुजा कुब्जिकेश्वरी रूपा। असि भवसि। कस्मिश्चिद् मते सकेसराष्टपत्राद् बहिरष्टकोणं तद्बहिः भूपुरत्रयमपि भवति। कादिमतान्तरे यदा कुब्जिकाविद्यायामेव विद्यानां समष्टिर्भवति, तदा बिन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-सकेसराष्ट-दलाष्टकोण-भूपुरत्रययुत-यन्त्रमेव कुब्जिका-श्रीचक्रराज-मुच्यते। विशेषतः कुब्जिकात्रिरत्नपञ्चरत्नविद्यानां सर्वमतेऽपि श्रीचक्रराजो विज्ञेयः। एतद्यन्त्रस्य त्रिकोण-षट्कोण-चक्रे मतान्तरे अष्टकोण-चक्रमपि विमर्शभागाः बिन्दुसकेसराष्टदलकमलभूपुरत्रितयचक्राणि प्रकाशभागाः भवन्ति। पूर्वोक्तकेवल-मिश्रबिन्दोः संहारो भवति। तस्मात् कारणात् संहाराम्नाययन्त्रे प्रकाशविमर्शा-त्मकमिश्रबिन्दोः प्रकाशविमर्शरूपभागद्वयं भवति। यतः सकलपश्चिमाम्नाय-चक्राणां बिन्दुपद्मभूपुरादिकाः प्रकाशभागाः कोणादिकाः विमर्शभागाः। इति यन्त्र-सङ्केतः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"बिन्दु-त्रिकोण-षट्कोणमष्टपत्रं सकेसरम्।
श्रीमत्कुब्जेश्वरीयन्त्रं सद्वारं भूपुरत्रयम्॥" इति।
बिन्दुत्रिकोणषट्कोणमष्टपत्राम्बुजं तथा।
समातृबीजाष्टदलमष्टश्रृङ्गं सभूपुरम्॥" इति च

आगमवचनम्।

भाषानुवाद— हे परा भगवती! अतिशय निर्मल त्रिकोण के मध्य में स्थित बिन्दुचक्र तथा बाहर षट्कोण, केसर से युक्त अष्टदलकमल एवं भूपुरत्रय से युक्त ऐसा दिव्य उत्तम यन्त्र जब प्रकाशित होता है अर्थात् पूर्वोक्त मिश्रबिन्दु इस प्रकार के यन्त्र-रूप को प्राप्त होता है, तब आप कुब्जिकेश्वरीरूपा होती हैं।

किसी के मत में केसरयुक्त अष्टपत्रों के बाहर अष्टकोण तथा उसके बाहर भूपुरत्रय भी है। कादिमन्तान्तर में जब कुज्जिका विद्या में ही सभी विद्याओं की समष्टि होती है तब बिन्दु, त्रिकोण, षट्कोण, केसरयुक्त अष्टदल, अष्टकोण तथा उसके बाहर भूपुरत्रय से समन्वित यन्त्र ही कुब्जिका त्रिरत्न और पञ्चरत्न विद्याओं के सर्व-मत में भी श्रीचक्रराज समझना चाहिए।

इस यन्त्र के त्रिकोण, षट्कोण चक्रों में मतान्तर से अष्टकोणचक्र भी विमर्श का भाग हैं। बिन्दु, केसर सहित अष्टदल कमल, भूपुरतृतय चक्र प्रकाश भाग हैं। पूर्वोक्त

केवल मिश्रबिन्दु का संहार होता है। इसलिए संहार आम्नाययन्त्र में प्रकाश-विमर्शात्मक मिश्र बिन्दु के प्रकाश और विमर्श रूप दो भाग होते हैं। जिससे समस्त पश्चिमाम्नाय चक्रों के बिन्दु, पद्म, भूपुर आदि प्रकाश भाग और कोणादि विमर्श भाग हैं। यह यन्त्र-संकेत हैं ॥१३॥

प्रतीच्याम्नाये त्वं कुलजननुते श्रीपरशिवे !
कुजा भूत्वा सर्वं हरसि तमसा स्वीकृततनुः।
कुजेशाकारः सः प्रभवति तदा श्रीपरशिव—
स्तयोरंशोत्पन्नः प्रलयति स रुद्रोऽखिलजगत् ॥१४॥

अन्वयः—हे कुलजननुते श्रीपरशिवे ! प्रतीच्याम्नाये त्वं तमसा स्वीकृततनुः कुजा भूत्वा सर्वं हरसि । तदा सः श्रीपरिशवः कुजेशाकारः प्रभवति। तयोः अंशोत्पन्नः सः रुद्रः अखिलं जगत् प्रलयति ।

व्याख्याः—कुलजनैः कौलिकैः, नुते प्रणमिते। श्रीपरशिवे । प्रतीच्याम्नाये पश्चिमाम्नाये। त्वं। तमसा तमोगुणेन स्वीकृता गृहीता तनुः शरीरं यस्याः सा। कुजा कुब्जिकेश्वरी। भूत्वा। सर्वं सकलं। सर्वपदेनात्र शिवादिक्षित्यन्तं तत्त्वजातमुच्यते। हरसि प्रलयसि । स श्रीपरशिवः चिद्घननिष्ठः। कुजेशाकारः स्वच्छन्दललित-भैरवरूपः। प्रभवति प्रजायते। तयोः कुब्जेशी-कुब्जेश्वरयोः। अंशात् उत्पन्नः अंश-जातः। स रुद्रः। अखिलं निखिलं च तत् जगत् लोकं भुवनं। प्रलयति संहरति।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

सिंहासनं प्रतीच्यां तु संक्षेपं शृणु पार्वति ।
अनेकशतसाहस्रं श्रीनाथेन च तारितम् ॥
मन्त्रं नानारहस्यं च यामलं लक्षसम्मितम् ।
स्वनाभिमथनाद् देवि स्वकीयरसना पुरा ॥
ब्रह्माण्डं गर्भतस्तस्या जातं दिव्येन योनिना।
तदारम्य महेशानि कुब्जादेवीति विश्रुता ।
ज्येष्ठबालप्रभेदेन कुब्जिका लोकपूजिता।
सद्योजातमुखोद्गीता पश्चिमाम्नायदेवता ॥
कुब्जिका जगतामाद्या महासंहाररूपिणी ।
अनन्तदेशिकैः सेव्या नित्या शिवसमागता ॥ इति

—श्रीपरातन्त्रवचनम् ।

बहु प्रभेदसंयुक्ता कुब्जिका च कुलालिका।
मातङ्ग्यमृतलक्ष्म्याद्या पश्चिमाम्नायदेवता ॥" इति

—श्रीवडवानलतन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :— हे कुलजनों (कौलिकों) के द्वारा प्रणत परशिवे ! पश्चिमाम्नाय में आप तमोगुण से स्वीकृत शरीरवाली कुब्जिकेश्वरी होकर समस्त शिवादिक्षिति-पर्यन्त जो तत्त्व हैं उनका संहार करती हैं और वह परशिव कुजेश के रूप में स्वच्छन्द ललितभैरवरूप बनता है तब कुब्जेशी और कुब्जेश के अंश से उत्पन्न वह रुद्र सारे जगत् का संहार करता है ॥१४॥

प्रतीच्यम्भोजे वै कुचभरनतां बर्बरशिखां,
मृगेन्द्राङ्के रूढां मदमुदितवक्त्रां त्रिनयनाम् ।
नृमुण्डानां मालामपि परिदधानां कुलकुजां,
सहस्राकाभां त्वां ह्यभयवरदां नौमि जननि ॥१५॥

अन्वयः—हे जननि ! प्रतीच्यम्भोजे वै कुचभरनतां बर्बरशिखां मृगेन्द्राङ्के रूढां मदमुदितवक्त्रां त्रिनयनां नृमुण्डानां मालां अपि परिदधानां अभयवरदां सहस्राकाभां सुखदां त्वां हि नौमि ।

व्याख्या :—हे जननि मातः प्रतीच्यम्भोजे पश्चिमाम्नाये । वै एव । कुचयोः स्तनयोः भरः भारः तेन नता नम्रा तां, बर्बरशिखां विकीर्णकेशभारां । मृगेन्द्रस्य सिंहस्य अङ्कं पृष्ठं तस्मिन् । रूढां उपविष्टां । मदेन अलिना मुदितं दृष्टं वक्त्रं वदनं यस्याः सा तां । त्रिनयनां त्रिनेत्रां । नृमुण्डानां नरशिरसां । मालां स्रजं अपि । परिदधानां बिभ्राणां । अभयवरदां अभयवरदहस्तां । सहस्रं दशशतम् अर्काः सवितारः तेषां भा इव भाः कन्तिर्यस्याः सा तां । कुलकुजां कुब्जिकारूपां । त्वां । हि । नौमि प्रणमामि ।

निर्गुणभावे :—कुचयोः बिन्दुयुगलयोः भरः भारः तेन नता नम्रा केवलमिश्र-बिन्दुः प्रलयतीति पूर्वमुक्तं तस्मात् संहारावस्थायां शुक्लारुणबिन्दुयुगलं निजभारनतं मिश्रबिन्दौ समष्टिर्भवति इति भावः । अत एव कुचभारनतां लयोद्यतामित्यर्थः । बर्बरशिखां बर्बरा विकीर्णा दीपवत् शिखा यस्याः सा तां । परमशक्तिर्दीपशिखावत् जयति । दीप-शिखायाः दीपशिखान्तरं यथा रज्जुसंमेलनात् प्रजायते तथैव दीपशिखावत् सा परम-शक्तिः प्रत्येकदेहिनां कुण्डलिनीरूपेण बहुधा भवति एवं सा विकीर्णिता तस्मात् बर्बरशिखां सकलजीवकुण्डलिनीरूपामिति भावः । मृगेद्राङ्के रूढां मृगेन्द्रः ज्ञानरूपसिंहः तस्य अङ्कं पृष्ठं तस्मिन् रूढां उपविष्टां ज्ञानासनां ज्ञानसत्तात्मि-कामित्यर्थः । मदमुदितवक्त्रां मद एव सहस्रदलपद्मनिःसृतलाक्षारसाभषीयूषधारा तेन मुदितं हृष्टं वक्त्रं वदनं यस्याः सा तां कुण्डलिनीशक्तिरूपामिति भावः । त्रिनयनां बिन्दुत्रय-समष्टिरूपिणीं । सकलजीवेषु नरा एव श्रेष्ठाः तेषामङ्गेषु ज्ञानविवेकविचारस्थानानि एव मुण्डानि तैर्निर्मितमालापरिदधानत्वात् महादेवी ज्ञानविचारविवेकरूपिणीति सूचिता । अभयवरदां स्वीयसाधकानामभयं तथा चेप्सितपरं च दातुमुद्यतां । सहस्रार्काभां

सूर्यबिन्दुरूपिणीं पूर्वोक्तमिश्रबिन्दुरूपां संहारस्वरूपिणीमित्यर्थः । कुलकुजां कुलकुण्डलिनीम् ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

"तरुणरविनिभास्यां सिंहपृष्ठोपविष्टां,
कुचभरनमिताङ्गीं सर्वभूषाभिरामाम् ।
अभयवरदहस्तामेकवक्त्रां त्रिनेत्रां,
मदमुदितमुखाब्जां कुब्जिकां चिन्तयामि ॥" इति

—आगमवचनम् ।

"वृषभे संस्थितं देवं खवर्णँरुपशोभितम् ।
एकवक्त्रं त्रिनेत्रं च भुजाष्टादशधारिणम् ॥
परशुं डमरुं बाणं खड्गमङ्कुशवज्रकम् ।
शङ्खञ्च वेणुवाद्यं च वरदं दक्षिणे करे ॥
बामेखट्वाङ्ग-शूलं च धनुःफलकपाशकम् ।
घण्टां कपालं वेणुं च अभयं भयनाशनम् ॥
पट्टेन वन्धितं जानुवामोरूस्था च कुब्जिका ।
एकवक्त्रा त्रिनेत्रा च करुणावरवर्णिता ॥
द्विभुजा वरदा देवी सिंहस्थाऽभयसव्यसु ।
नानाभरणभुषाङ्गी खण्डेन्दुकृतशेखरा ॥
वर्बरा केशपाशेन चारुपीनघनस्तनी ।
एवं ध्येया कुजा माता पश्चिमाम्नायनायिका ॥इति ॥

—श्रीपरातन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद—(सगुण भावात्मक अर्थ)

हे जननी ! पश्चिमाम्नाय में कुचों के भार से नत, बिखरे हुए बालोंवाली, सिंह पर विराजमान, मद से मुदित मुखवाली, त्रिनेत्रा, नरमुण्डों की माला पहनी हुई अभय तथा वरदमुद्रा से युक्त तथा हजारों सूर्यों के समान तेजस्वी कुब्जिकारूप आपको मैं प्रणाम करता हूं ।

(निर्गुण भावात्मक अर्थ)

शुक्ल तथा अरूणरूप बिन्दुयुगल के भार से नत, मिश्रबिन्दु में समष्टिरूप विलीन होने के लिए उद्यत, विकीर्ण दीपज्योति तथा जैसे एक दीपशिखा से अन्य दीपशिखा प्रज्वलित होती है, उसी प्रकार प्रत्येक शरीरी के शरीर में कुण्डलिनी के रूप में व्याप्त, ज्ञानासना, ज्ञान-सत्तारूप, सहस्रदल पद्म से निःसृत लाक्षारसतुल्य कान्तिवाली अमृतधारा से प्रसन्न मुखवाली, अर्थात् कुण्डलिनी शक्तिरूपा बिन्दुमय समष्टि-

रूपिणी ज्ञान, विवेक और विचारूपिणी महादेवी, अपने भक्तों को अभय तथा ईप्सित वर प्रदान करने में उद्यत सूर्यबिन्दुरूप संहारस्वरूपिणी कुलकुण्डलिनी को मैं प्रणाम करता हूं ॥१५॥

४–उत्तराम्नायः

सबिन्दुस्त्र्यस्राढ्यं शरनवकवृत्ताष्टदलकैः,
सुवृत्ताष्टार्केन्द्राभिधनलिनकाष्टाशनियुतम् ।
शिरश्शूलज्वालापितृवनयुतं यन्त्रमतुलं,
यदा भाति त्वं वै भवसि भुवि गुह्या भगवति ! ॥१६॥

अन्वयः—हे भगवति ! यदा स बिन्दुस्त्र्यस्राढ्यं शरनवकवृत्ताष्टदलकैः (युतं) सुवृत्ताष्टार्केन्द्राभिधनलिनकाष्टाशनियुतं शिरश्शूलज्वालापितृवनयुतं अतुलं यन्त्रं भाति । (तदा) त्वं वै भुवि गुह्या भवसि ।

व्याख्या:—हे भगवति ! यदा यस्मिन्काले । बिन्दुना बैन्दवचक्रेण सह वर्तमानं यथा स्यात् तथा त्र्यस्रं त्रिकोणं तेन आढ्यं युक्तं । शराश्च पञ्चकोणञ्च नवकञ्च नवकोणञ्च वृत्तञ्च वर्तुलाकारश्च अष्टकञ्च अष्टपत्रञ्च अर्कश्च द्वादशपत्रञ्च (इन्द्र एव चतुर्दशः) इन्द्राभिधनलिनकञ्च चतुर्दशपत्रकमलञ्च अष्टाशनिश्च तैः युतं संयुक्तम् । शिवः अतुलं महत् यन्त्रंचक्रं । (पूर्वोक्तवत्) भाति शोभते । तदा तस्मिन्काले । त्वं । भुवि भूशब्देनात्र चतुर्दशभुवनमित्युच्यते । गुह्या गुह्यकालीरूपा । भवसि वर्तसे । एतद्-यन्त्रस्य त्रिकोण-पञ्चकोण-नवकोण-चक्राणि विमर्शभागाः अन्यानि सर्वचक्राणि प्रकाश-भागाः भवन्ति । पूर्वोक्तकेवलमिश्रबिन्दोः तिरोधानं भवति । तस्मात् कारणात् अनाख्यायन्त्रे प्रकाशविमर्शात्मकमिश्रबिन्दोः प्रकाश-विमर्शरूपं भागद्वयं भवति । यतः सकलोत्तराम्नायचक्राणां कोणादिकाः विमर्शभागाः अन्यचक्राणि प्रकाशभागाः भवन्ति । इति यन्त्रसङ्केतः ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्

"सबिन्दुत्र्यारपञ्चार-विभिन्ननवकोणकम् ।
वृत्तयोरन्तरेऽष्टारयुतं तदनु भामिनि ॥
वस्वर्क-भूप-छदनाम्भोजवृत्तान्वितं ततः ।
अष्टाशनिसमायुवतमन्तर्बहिरथापि च ॥
अष्टशूलाष्टमुण्डाढ्यं वह्निज्वालायुतेन हि ।
श्मशानेनावृतं शेषे शोणितोदेन वेष्टितम् ॥
यन्त्रराजमिदं देवि पूजनाय प्रकल्पितम् ॥" इति ।

—श्रीमहाकालसंहितावचनम् ।

भाषानुवाद :-- हे भगवती ! जब (उत्तराम्नाय में) बिन्दु, त्रिकोण, पंचकोण, नवकोण, वृत्त, अष्टदल, द्वादशदल, चतुर्दशल, आठ वज्रों से युक्त, ऊपर शूल और ज्वाला से युक्त श्मशान से आवृत्त यन्त्र शोभित होता है, तब आप इस भूतल पर गुह्य-काली के रूप में पूज्य होती हैं।

यन्त्र संकेत :—इस (गुह्यकाली यन्त्र) के त्रिकोण, पञ्चकोण, नवकोणचक्र विमर्श-भाग हैं तथा अन्य सभी चक्रभाग प्रकाश भाग होते हैं। केवल पूर्वोक्त मिश्रबिन्दु का तिरोधान होता है, इसलिए अनाख्यायन्त्र में प्रकाश-विमर्शात्मक मिश्रबिन्दु के प्रकाश विमर्श रूप दो भाग होते हैं। क्योंकि समस्त उत्तराम्नाय के चक्रों के कोणादि विमर्श-भाग तथा अन्य चक्र प्रकाश भाग होते हैं ॥१६॥

उदीच्याम्नाये त्वं मनुतनुरनाख्या त्रिगुणका,
परे गुह्या भूत्वाऽऽचरसि हि तिरोधानमखिलम् ।
नृसिंहाकारः सन् निवसति तदा श्रीपरशिव—
स्तयोरंशोत्पन्नेश्वर इह पिधानं प्रकुरुते ॥१७॥

अन्वयः —हे परे ! त्वं वै उदीच्याम्नाये मनुतनुः अनाख्या त्रिगुणका गुह्या भूत्वा अखिलं तिरोधानं हि आचरसि। तदा श्रीपरशिवः नृसिंहाकारः सन् निवसति। तयोः अंशोत्पन्नेश्वरः इह पिधानं प्रकुरुते।

व्याख्या— हे परे ! त्वं वै। उदीच्याम्नाये उत्तराम्नाये। मनुः मन्त्रः एव तनुः शरीरं यस्याः सा मन्त्रमयमूर्तिः। अनाख्या मनोवचनागम्या। त्रयो गुणाः सत्त्वरजस्तमो-गुणाः यस्याः सा। गुह्या गुह्यकालीरूपा भूत्वा। अखिलं निखिलं अखिलपदेनात्र शिवा-दिक्षित्यन्तं तत्त्वजातमुच्यते। तिरोधानं अन्तस्थान। हि निश्चयेन। आचरसि करोषि। तदा तस्मिन् काले। श्रीपरशिवः चिद्घननिष्ठः। नृसिंहाकारः नारसिंहभैरवस्वरूपः सन्। निवसति वर्तते। तयोः गुह्येश्वरीगुह्येश्वरयोः। अंशात् विभूत्याः उत्पन्नः जातः स चासौ ईश्वरः। इह अत्र संसारे। पिधानं तिरोधानं। प्रकुरुते विदधाति। कस्मिंश्चित् मते उत्तराम्नायः अनाख्यारूपः, उर्ध्वाम्नायः भासारूपः, इत्यभिधीयते। मतान्तरे उर्ध्वाम्नायः अनाख्यारूपः, उत्तराम्नायः भासारूपः इति चोच्यते। बडवानलीयतन्त्रे तु उभयोरेकत्वव्याख्यानं दृश्यते। उक्तं च—

"महात्रिपुरसुन्दर्य्याश्चण्डयोगेश्वरी परा।
न तयोर्विद्यते भेदो भेदकृन्नरकं व्रजेत् ॥"

पूर्वोक्त-योनि-बिन्दु-विसर्गाणां सगुणमूर्तिरुत्तराम्नायमते कामकलाकाली चोर्ध्वाम्नायमते तु बृहद्रूपिणी महात्रिपुरसुन्दरीति बडवानलीयतन्त्रं व्याख्याति। तत् तन्त्रोक्तमहात्रिपुरसुन्दर्य्याः भैरवस्य पञ्चवदन-रूपे मध्यवक्त्रं एव सिंहरूपं उर्ध्व-

ज्योतिर्वक्त्रान्तरे सिद्धिकरालीति । उक्तं च—

"सिंहास्यं मध्यवक्त्रन्तु दक्षिणे कोलकृष्णम्" इति । "ज्योतिर्वक्त्रान्तरे सिद्धि-करालीं च चिन्तयेत्" इति च वडवानलतन्त्रोक्त-निर्वाणभैरवध्याने । पुनः सिद्धि-कराल्याः भैरवो नारसिंहभैरव इति महाकालसंहितायां गुह्यखण्डे स्पष्टं दृश्यते ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

"अनाख्या चोत्तरे देवि भासा ह्यूर्ध्वे प्रकीर्तिता ।" इति

—आगमसारवचनम्

"वामदेवाश्रिताम्नायं कथयामि तवाग्रतः ।
उग्राम्नायमुद्भवन्तु कालीकुलसमुद्भवा ।
कोटि-कोटिप्रभेदोस्ति कालिका तीव्रनायिका ।
आज्ञासिद्धिप्रदादेवी विष्णुतेजोपसंहिता ।
नारायणी महाकाली चण्डयोगेश्वरीति च ।
काली काली महाकाली जगद्रक्षणतत्परा ।।
तिष्ठन् गच्छन् स्मरन्नित्यं मुच्यते महतो भयात् ।
आब्रह्मस्थावरान्ताश्च कालेन कलयन्ति च ।।
तं कालं कलयेत् काली ततः सा कालिका स्मृता ।
अनेकचक्रचक्रेशी नानाभेदो महागमा ।।
शक्यते कालिकादेव्या देव्यो ब्रह्मादयोपि हि ।
तथापि लेशमात्रन्तु कुमारी क्रमतः शृणु" ।। इति

—श्रीपरातन्त्रवचनम् ।

"भेदास्त्वेकोन पञ्चाशदुत्तराम्नायवर्त्मनि ।
गुह्यकाली ततः प्रोक्ता सिद्धिलक्ष्मीस्ततः परम् ।।
स्वर्णकोटीश्वरी तत्र राजराजेश्वरी तथा ।
गुह्येश्वरी तथा प्रोक्ता तथा तारा त्रिरूपिणी ।।
छिन्नमस्ता महादेवी ततः प्रोक्ताऽतिभीषणा ।
एवंविधास्तु सङ्केताः सदा गोप्याः प्रकीर्तिताः ।" इति

—मुण्डमालावचनम् ।

भाषानुवाद :—हे परा भगवति ! आप उत्तराम्नाय में मन्त्रमय मूर्ति मन और वचन से अगम्य तथा सत्त्व, रज एवं तमोरूप त्रिगुणवाली गुह्यकालीरूप होकर समस्त शिवादि-क्षित्यन्त का निश्चित रूप से तिरोधान करती हैं। उस समय श्री परशिव नृसिंहाकार-नारसिंह भैरवरूप बनते हैं। और उन गुह्येश्वरी तथा गुह्येश्वर के अङ्ग से उत्पन्न वह ईश्वर इस संसार में तिरोधान-संहार कर्म करता है। किसी के मत में

उत्तराम्नाय अनाख्यारूप तथा उर्ध्वाम्नाय भासारूप कहा गया है। जबकि अन्य मत में उर्ध्वाम्नाय भासारूप कहा जाता है। किन्तु वडवानल-तन्त्र में तो इन दोनों आम्नायों का एक तत्त्व ही प्रतिपादित है। यथा—

महात्रिपुरसुन्दरी और चण्डयोगेश्वरी परा इन दोनों में कोई भेद नहीं है। इनमें भेद करनेवाला नरकगामी होता है।

पूर्वोक्त योनि बिन्दु एवं विसर्ग की सगुण मूर्ति उत्तराम्नाय मत में 'कामकला-काली' तथा ऊर्ध्वाम्नाय मत में बृहद्रूपा महात्रिपुरसुन्दरी है ऐसा बडवानलतन्त्र कहता है। इस तन्त्रोक्त महात्रिपुरसुन्दरी के भैरव के पञ्चमुख रूप में बीचवाला मुख ही सिंहरूप है, ऊर्ध्वज्योति मुख में तो सिद्धिकराली मानी गई है।

वडवानलतन्त्रोक्त निर्वाण-भैरव के ध्यान में उपर्युक्त बात कही गई है तथा महाकालसंहिता के गुह्यखंड में सिद्धिकराली का भैरव नारसिंह भैरव है ॥१७॥

मृगेन्द्रेभाश्वर्क्षाख्य-मकर-गरुत्मानवशिव—
प्लवङ्गेशीवक्त्रां श्रुतिरशरभुजैरायुधधराम्।
उदीच्याम्भोजे त्वां विधुसकलचूडां घननिभां,
भजेऽहं गुह्येशीमभिनववयस्कां भगवति ! ॥१८॥

अन्वयः—हे भगवति ! उदीच्याम्भोजे मृगेन्द्रेभाश्वर्क्षाख्यमकर-गुरुत्मानव-शिवप्लवङ्गेशीवक्त्रां श्रुतिशरभुजैः आयुधधरां विधुसकलचूडां घननिभां अभिनववयस्कां गुह्येशीं त्वां अहं भजे।

व्याख्या:—हे भगवति ! मृगेन्द्रश्च सिंहश्च इभश्च हस्ती च अश्वश्च तुरगश्च ऋक्षाख्यश्च भल्लुश्च मकरश्च ग्राहश्च गरुच्च खगेन्द्रश्च मानवश्च मनुष्यश्च शिवश्च शृगालश्च प्लवंगश्च वानरश्च ईशी च योगेश्वरी च तासां वक्त्राणि इव वक्त्राणि आननानि यस्याः सा तां श्रुतिशरैः चतुःपञ्चाशद्भिः भुजैः बाहुभिः। आयुधानां प्रहरणानां धरा तां। विधुसकलचूडां शशिधरां। घनसमानां श्यामवर्णां अभिनवं नूतनं वयः अवस्था यस्याः सा तां। गुह्येशीं सिद्धिकरालीरूपां। त्वां। अहं भजे।

निर्गुणभावे:—मृगेन्द्रश्च ज्ञानशक्तिश्च इभश्च आधारशक्तिश्च, अश्वश्च वेगशक्तिश्च, ऋक्षाख्यश्च भूचरशक्तिश्च, मकरश्च जलचरशक्तिश्च गरुच्च, खेचर-शक्तिश्च, मानवश्च चैतन्यशक्तिश्च, शिवा च धीशक्तिश्च, प्लवङ्गश्च आरोहावरोहकर्त्री कुण्डलिनीशक्तिश्च ईशी च योगशक्तिश्च ता एव वक्त्राणि यस्याः सा तां विराड्रूपिणी-मिति भावः। श्रुतिशरभुजैरायुधधरां चतुःपञ्चाशत्करैः प्रहरणधरां मनश्चित्ताहङ्कार-समेतपञ्चाशदक्षरमयीं तस्मात् "अक्षराद्विश्वसम्भवः" इति सिद्धान्तात् महादेवीं

विश्वान्तः करणरूपामिति सूचितम्। विधुसकलचूडां परमामृतरूपिणीं विश्वम्भरां। घननिभां अभिनववयस्कां विश्वं पुनर्बहिर्निस्सारणोद्यतां। गुह्या अतीव गुप्ता सैव ईश्वरी अनाख्यास्वरूपिणीति भावः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

दशवक्त्रा षोडशार्णा चतुः पञ्चाशदोर्युता।
सर्वासां गुह्यकालीनां सा वै मुख्यतमा स्मृता॥" इति

—विशेषस्तु महाकालसंहितागुह्याखण्डे द्रष्टव्यम्।

भाषानुवाद :—(सगुणरूपार्थ)

हे भगवति ! उत्तराम्नाय में सिंह, हाथी, अश्व, भालू, मकर, गरुड, मनुष्य, शृगाल, वानर और योगेश्वरी के मुखोंवाली, चौवन भुजाओं में अयुधों को धारण करने वाली, चन्द्रकलाधारिणी, श्यामवर्ण तथा युवति-स्वरूप ऐसी सिद्धिकरालीरूप आपका मैं स्मरण करता हूं।

भाषानुवाद :—(निर्गुण भावातमक) हे भगवति ! उत्तराम्नाय में ज्ञानशक्ति, आधारशक्ति, वेग-शक्ति, भूचरशक्ति, जलचर शक्ति, खेचर-शक्ति, चैतन्यशक्ति, धी-शक्ति, आरोह-अवरोह करनेवाली कुण्डलिनी शक्ति और योगशक्ति जिस विराट्रूप के मुख हैं, मन बुद्धि, चित्त तथा अहंकार-सहित पचास अक्षररूप मातृकारूप चौवन भुजाओं में आयुधों को धारण करनेवाली परमामृतरूपिणी विश्वम्भरा, घन के समान, दयामयी और विश्व को पुनः बाहर निकालने के लिए उद्यत अतीव गुप्त अनाख्या—स्वरूपिणी आपकी मैं शरण प्राप्त करता हूं॥१८॥

५—ऊर्ध्वाम्नायः

सबिन्दुत्र्यष्टादिग्युगलमनुकोणाष्ट-विधुक—
त्रिवृत्तज्यागेह-त्रितययुतयन्त्रं लसति ते।
तदा कामेशी त्वं जननि ! निखिलाम्नायनिलया,
परे ! श्रीविद्याख्या भवसि कुलपूज्या क्रमयुता॥१९॥

अन्वयः—हे परे जननि ! ते सबिन्दुत्र्यष्टादिग्युगलमनुकोणाष्ट-विधुक-त्रिवृत्त-ज्यागेहत्रितययुतयन्त्रं लसति। तदा त्वं कुलपूज्या क्रमयुता निखिलाम्नायनिलया श्रीविद्याख्या कामेशी भवसि।

व्याख्या :—हे परे ! जननि मातः ! ते बिन्दुश्च सर्वानन्दमय-बैन्दवचक्रञ्च, त्रि च सर्वसिद्धिप्रदत्रिकोणचक्रञ्च अष्ट च सर्वरोगहराष्टारचक्रञ्च, दिग्युगलञ्च

सर्वरक्षाकरान्तर्दशारसर्वार्थसाधनकरबहिर्दशारचक्रद्वयं च, मनुकोणञ्च सर्वसौभाग्य-दायकचतुर्दशारचक्रञ्च, अष्ट च सर्वसंक्षोभणाष्टदलचक्रञ्च, विधुकञ्च सर्वाशा-परिपूरकषोडशदलचक्रञ्च, त्रिवृत्तञ्च त्रैवर्गसाधनकरत्रिवृत्तञ्च, ज्यागेह-त्रितयञ्च त्रैलोक्यमोहनकर-भूपुरत्रयचक्रं च तैः युतं तेन सह वर्तमानं यथा स्यात् तथा चादः यन्त्रं। लसति प्रकाशते। पुरोक्तकामकलाललनाचारेण मिश्रबिन्दोरुच्छलनात् श्रीचक्रतां याति इत्यर्थः। श्रीचक्रस्योद्धारः क्रमत्रयेणापि भवति। सृष्टिस्थितिसंहारक्रमा एव क्रमत्रयं भवति। तत्क्रमत्रयेणोद्धृत-श्रीचक्रोद्धारप्रमाणमत्र शास्त्रवचनप्रमाणे दर्शयिष्यते। त्वं। कुलपूज्या कुलाचारेण पूज्या। कुलाचारश्चात्र शास्त्रवचनप्रमाणे दर्शयिष्यते। क्रमयुता कादिसादिहादिक्रममन्त्रसमष्टिरूपिणी। निखिलाम्नायनिलया सर्वाम्नायेश्वरी। श्रीविद्याख्या श्रीविद्यास्वरूपिणी। कामेशी श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी-रूपा। भवसि।

एतद्यन्त्रराजस्य बिन्दु-अष्टदल—षोडशदल-वृत्तत्रय-भूपुरचक्राणि एतानि पञ्च चक्राणि शैवभागः अत एव प्रकाशांशा भवन्ति। तत्रैव त्रिकोण-अष्टकोण-दशकोण-द्वयं चतुर्दशारमेतानि पञ्च चक्राणि शक्तिचक्राणि, अत एव विमर्शांशाः भवन्ति। इति यन्त्रसङ्केतः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म—
मन्वस्त्रनागदलसङ्गतषोडशारम्।
वृत्तत्रयञ्च धरणीसदनत्रयञ्च,
श्रीचक्रराजमुदितं परदेवतायाः॥" इति

सृष्टिक्रमे।

"बिम्बचक्रमथ षोडश चाष्टबिन्दु-
रग्यस्त्रसंयुतमहत्त्रितयं दशारम्।
वेदारसंयुतदशास्पदमध्यरूपां,
त्वां वै महात्रिपुरसुन्दरि नौम्यहं श्रीः॥" इति

स्थितिक्रमे।

"भूवेश्मगत्रिवृतषोडशनागशक्र—
दिग्युग्मवस्वनलकोणगबिन्दुमध्ये।
सिंहासनोपरिगतारकपीठमध्ये,
प्रोत्फुल्लपद्मनयनां त्रिपुरां भजेऽहम्॥" इति

संहारक्रमे।

"कुलस्त्रियं कुलगुरुं कुलदेवीं महेश्वरि ।
नित्यं यत् पूजयेद्विश्वं स कुलाचार उच्यते ।। इति
—इति रुद्रयामलतन्त्रवचनम् ।

"त्रैलोक्यमोहनं चक्रं सर्वाशापरिपूरकम् ।
सर्वसंक्षोभणं चक्रं सर्वसौभाग्यदायकम् ।।
सर्वार्थसाधनं चक्रं सर्वरक्षाकरं परम् ।
सर्वकामप्रदं चक्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ।।
सर्वानन्दमयं चक्रं नवमं चक्रनायकम् ।
सर्वे तद्बैन्दवे लीनास्तच्छ्रीचक्रमुदाहृतम् ।।" इति
—श्रीपरातन्त्रवचनम् ।

"बिन्दुत्रयमयं तेजस्त्रिविकारं त्रिवृत्तकम् ।
त्रैवर्गसाधनं चक्रं पशूनां बुद्धिनाशनम् ।।" इति
—श्रीवडवानलतन्त्रवचनम् ।

त्रिकोणमष्टकोणञ्च दशकोणद्वयं तथा ।
चतुर्दशारं चैतानि शक्तिचक्राणि पञ्च ह ।।
बिन्दुमष्टदलं पद्मं तथा षोडशपत्रकम् ।
त्रिवृत्तं चतुरस्रञ्च शिवचक्राणि सुन्दरि ।।
त्रिकोणरूपिणी शक्तिर्बिन्दुरूपः शिवः स्मृतः ।
बिन्दोरन्तर्गता देवी महात्रिपुरसुन्दरी ।।" इति
—श्रीमहायोनितन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद (ऊर्ध्वाम्नाय)—

हे परादेवी ! आपका बिन्दु-सर्वानन्दमय बैन्दव चक्र, सर्वसिद्धिप्रद त्रिकोण चक्र, सर्वरोगहर अष्टमचक्र, सर्वरक्षाकर अन्तर्दशारचक्र, सर्वार्थसाधनकर बहिर्दशारचक्र, सर्वार्थदायक्र चतुर्दशार चक्र, सर्वसंक्षोभण अष्टदल चक्र, सर्वाशापरिपूरक षोडशदल चक्र, त्रैवर्गसाधनकर त्रिवृत्त तथा त्रैलोक्यमोहनकर भूपुरत्रय चक्र से युक्त आपका यन्त्र प्रकाश को प्राप्त होता है। तब पूर्वकथित कामकला और ललनाकार से मिश्रबिंदु के ऊपर उठने पर वह श्रीचक्र रूप को प्राप्त होता है। तब आप कुलाचार से पूज्य तथा क्रममन्त्रसमष्टिरूपिणी समस्त आम्नायनिलया सर्वाम्नायेश्वरी श्रीविद्यारूपा श्रीमहा-त्रिपुरसुन्दरी रूप होती हैं।

इस यन्त्रराज के सृष्टि, स्थिति और संहार रूप से तीन क्रम होते हैं। इसमें बिन्दु, अष्टदल, षोडशदल, वृत्तत्रय और भूपुरचक्र ये पांच शिवचक्र हैं इसीलिए ये प्रकाशांश हैं। इसी प्रकार त्रिकोण, अष्टकोण, दशकोणद्वय तथा चतुर्दशार ये पांच चक्र शक्ति चक्र है अतः ये विमर्शांश हैं। यह यन्त्र सङ्केत है ।।१९।।

सदाशिवः

महोर्ध्वाख्ये भाषा सुवचनमनोगम्यतनुयुक्,
परे ! त्वं श्रीर्भूत्वाऽऽचरसि निखिलानुग्रहमलम् ।
तदा निर्वाणाख्यः प्रभवति परः कामतनुमान्,
तयोरंशोत्पन्नः शमनुतनुते पञ्चवदनः ॥२०॥

अन्वयः— हे परे ! त्वं महोर्ध्वाख्ये सुवचनमनोगम्यतनुयुक् भाषा श्रीः भूत्वा निखिलानुग्रहं अलं आचरसि । तदा परः निर्वाणरूपः कामतनुमान् प्रभवति । तयोः अंशोत्पन्नः पञ्चवदनः शं अनुतनुते ।

व्याख्याः—हे परे ! त्वं महोद्ध्र्वाख्ये ऊर्ध्वाम्नाये सुवचनञ्च मनश्च ताभ्यां अगम्या या तनुः तया युक्ता सुवचनमनोगम्यतनुयुक् अवाङ्मनसगोचरा । भाषा सूक्तैकमूर्तिः । श्रीः श्रीविद्यास्वरूपिणी महात्रिपुरसुन्दरीरूपा । भूत्वा । अनुग्रहं पुनः बहिः निस्साररणरूपानुग्रहम् । अलं अत्यन्तं । आचरसि करोषि । तदा तस्मिन् काले । परः चिद्घननिष्ठः । निर्वाणेन आख्यातः निर्वाणभैरव इति आख्यातः । कामतनुमान् कामेश्वरभैरवरूपः । प्रभवति जायते । तयोः कामकामेश्वरयोः । अंशोत्पन्नः अंशाज्जातः । पञ्चवदनः पञ्चवक्त्रसदाशिवः शं पूर्ववत् अनुग्रहं । अनुतनुते करोति ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

"ऊर्ध्वसिंहासनं वक्ष्ये त्रैलोक्यैश्वर्य-सूचकम् ।
सर्वचक्रेश्वरी नित्या सर्वाम्नायप्रपूजिता ॥
सर्वसिंहासनमयी ईशानास्येन चोदिता ।
परब्रह्मेश्वरी चाद्या देवी नारायणीश्वरी ॥
निद्रा बुद्धिः क्षमा ख्यातिः क्षुधा लज्जा स्मृतिर्धृतिः ।
तस्या दर्शनमात्रेण साक्षाल्लक्ष्मीपतिर्भवेत् ॥" इति —परातन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :—सदाशिव

हे परादेवी, आप महोर्ध्वाम्नायमें मन और वचनसे अगम्य भाषारूप श्रीविद्यामय महात्रिपुर सुन्दरी रूप होकर पुनः बाह्य प्रकटनरूप पूर्ण अनुग्रह करती हो, तब चिद्घननिष्ठ निर्वाणभैरव कामेश्वररूप हो जाते हैं और उन काम तथा कामेश्वर के अंश से उत्पन्न पञ्चवक्त्र सदाशिव पूर्ववत् अनुग्रह करते हैं ॥२०॥

महोर्ध्वाम्नाये त्वां क्रमगनिखिलाम्नायजननीं,
हठाचारैर्लभ्यां कहस-ननुरूपां त्रिपथगाम् ।
हकारार्धां सार्धामकुलकुलमार्गाभ्यसनिनीं,
महापञ्चप्रेतोपरि रुचिरसिंहासनगताम् ॥२१॥

सहस्रादित्याभामरुणवासनां, मन्द्रहसनां,
त्रिनेत्रास्यां पाशाङ्कुशकुसुमबाणैक्षवधराम् ।
निशानाथोत्तंसां जितमदनरूपाञ्च युवतीं,
भजेऽहं श्रीविद्ये ! त्रिपुरललितां श्रीपदयुताम् ॥२२॥

अन्वयः—हे श्रीविद्ये ! महोर्ध्वाम्नाये त्वां क्रमगनिखिलाम्नायजननीं कहसमनुरूपां अकुलकुलमार्गाभ्यसनिनीं हठाचारैर्लभ्यां त्रिपथगां हकारार्द्धां सार्द्धां महापञ्चप्रेतोपरि रुचिरसिंहासनगतां सहस्रादित्याभां जितमदनरूपां च युवतीं त्रिनेत्रास्यां मन्द्रहसनां निशानाथोत्तंसां अरुणवसनां पाशाङ्कुशकुसुमबाणैक्षवधरां श्रीपदयुतां त्रिपुरललितां अहं भजे ।

व्याख्याः—हे श्रीविद्ये ! विद्योत्तमे । महोर्ध्वाम्नाये महति ऊर्ध्वाम्नायविख्याते सिंहासने । त्वां । क्रमं क्रमदीक्षां गच्छन्तीति ते च अखिलाः सकलाः आम्नायाः सिंहासनाः तेषां जननी प्रसवित्री तां । कश्च कादिमतश्च हश्च हादिमतश्च सश्च सादिमतश्च ते तन्मया एव मनवः मन्त्राणि ते एव रूपं शरीरं यस्याः सा ताम् । अकुलात् ब्रह्मरन्ध्रस्थ-गुरुमण्डलात् कुलं मूलाधारस्थकुण्डलिनीं पुनः कुलात् अकुलं तदेव मार्गस्तस्मिन् अभ्यसनिनी अटन्ती तां । आरोहावरोहक्रमगां कुलकुण्डलिनीं गुरुसमष्टिरूपा-मित्यर्थः । हश्च निश्वासश्च ठश्च उच्छवासश्च तयोः आचारः क्रियाभ्यासः तैः । लभ्यां प्राप्यां । त्रयश्च ते पन्थानः तैः गच्छन्तीति तां इडापिङ्गलासुषुम्णानाडीत्रयसञ्चारिणी-मित्यर्थः । हकारार्द्धां सार्द्धां समाधौ-प्रासादबीजस्योभयाक्षररूपिणीं । अतएव केवल-सचैतन्य-प्रकाशविमर्शात्मिकामित्यर्थः । सा गुरुमुखादेवावगन्तव्या । महापञ्चप्रेताः पृथ्व्यात्मकब्रह्मा । च । जलात्मकविष्णुश्च । तैजसात्मकरुद्रश्च, वाय्वात्मकेश्वरश्च आकाशात्मकसदाशिवश्च ते एव पञ्चमहाप्रेताः तेषां उपरि रुचिरं मनोहरं सिंहासनपीठं तस्मिन् गतां स्थितां । सगुणभावेन ब्रह्मविष्णुरुद्रेश्वराः मञ्चखुररूपाः सदाशिवश्च फलकरूपः एवं तैर्निर्मितसिंहासनोपरि श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी जयति । निर्गुणभावेन—पृथ्व्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मक-पञ्चमहाभूतानि कवलीकृत्य साक्षात् ब्रह्मचैतन्यरूपिणी श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी जयति । योगाभ्यासमंते पञ्चभूता-मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूर-कानाहतविशुद्ध्युपरि इडापिङ्गलासुषुम्णानाडित्रयस्पन्दिरूपात्मकाज्ञाचक्रे परमात्मरूपिणी श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी विराजति इति भावः । सहस्रं आदित्याः सूर्याः तेषां आभा इव आभा कान्तिर्यस्याः सा तां सगुणभावे सहस्रार्कवत् तेजस्विनी अरुणवर्णा । निर्गुणभावे प्रकाशान्तर्गतविमर्शरूपिणी । जितं तिरस्कृतं मदनस्य कामदेवस्य रूपं स्वरूपं यया सा तां—सगुण भावे अतीव सुन्दरीं निर्गुणभावे तु मदन एव सकलप्राणिनः उत्पत्तिकारण-मुच्यते, तस्य रूपमेव सकलजगत्सृष्टिहेतुः तां विश्वानुग्रहकर्त्री इत्यर्थः । युवतीं तरुणीं निर्गुणभावे च युवती एव गर्भवती भवति नतु वृद्धा बालिका च तस्मात् विश्वं पुनः बहिर्निस्सारणोद्यतामिति भावः । त्रीणि नेत्राणि नयनानि यस्य तत् तदेव आस्यं बदनं यस्याः सा तां सूर्येन्द्वग्न्यात्मकनयनत्रययुक्तमुखीं निर्गुणभावे पूर्वोक्तबिन्दुत्रयसमष्टि-

रूपिणीं कामकलात्मिकां इति भावः। मन्द्रहसनां मन्द्रं गभीरं हसनं हास्यं यस्याः सा तां आनन्दात् हर्षात् वा नरो हसति तस्मात् कारणात् मन्द्रहसनां, निर्गुणभावे आनन्दरूपां इति भावः। निशानाथः चन्द्रः एव उत्तंसः शिरोभूषणं यस्याः सा ताम्। सगुणभावे अर्ध-चन्द्रमुकुटां निर्गुणभावे तु चन्द्रः एव अमृतरूपः,तस्मात्कारणात् निशानाथोत्तंसां परमामृत-स्वरूपिणीं अत एव विश्वम्भरां। अरुणं रक्तं वसनं वस्त्रं यस्याः सा तां। सगुणभावे रक्तवस्त्रधरां, निर्गुणभावे तु अरुणः एव सूर्य्यः अत एव तेजःपुञ्जः स एव (आच्छादन) वस्त्रं यस्याः प्रकाशेन आच्छादितविमर्शशक्तिरिति भावः। पाशश्च रज्जुश्च अंकुशश्च सृणिश्च कुसुमबाणश्च पञ्चपुष्पशराश्च ऐक्षवं च इक्षुचापश्च तेषां धरा दधती तां। सगुणभावे पाशांकुशपुष्पबाणेक्षुचापं भुजचतुष्कैः धृतां, निर्गुणभावे तु पाशः एव जगद्वशीकरणत्वं, अंकुश एव जगत्स्तम्भनत्वं कुसुमबाणाश्च शोषण-मोहनसन्दीपनता-पनमादनाः पञ्चबाणा एव जगज्जृम्भणत्वं ऐक्षवधनुः एव जन्गमोहनत्वं तत्सर्वं धारण-त्वात् तत्सर्वाधीनकृतां इति भावः। श्री-इत्याकारं यत्पदं तेन युतां। त्रिपुरललितां त्रिपुरसुन्दरीं। त्रयाणां पुराणां शुक्लारुणमिश्रबैन्दवात्मकस्थूलसूक्ष्मकारणदेहानां समाहारः तस्य ललिता अथवा सुन्दरी शक्तिः जगदादिकारिणी शक्तिरिति भावः। श्रीपदयुतां त्रिपुरललितां एव श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीं। अहं। भजे।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"सूर्य्येन्द्वग्निमयैकपीठनिलयां बालार्कबिम्बारुणां,
त्र्यक्षां चन्द्रकलावतंसमुकुटां पीनस्तनीं सुन्दरीम्।
पाशं चाङ्कुशमिक्षुचापविधृतां पुष्पेषुहस्तां परां,
नानाभूषणभूषितातिसुकुमाराङ्गीं भजे बैन्दवे॥" इति —आगमवचनम्

"जगद्व्याप्तवतीं मायां मोहयन्तीं सुरासुरान्।
अरूपां रूपिणीभूतां सुन्दरीं कथयामि ते॥
पद्मरागप्रतीकाशा कुंकुमोदकसन्निभा।
सुभ्रुवा च सुनेत्रा च सुस्तनी चारुहासिनी॥
कृशमध्या चतुर्बाहू खण्डेन्दुकृतशेखरा।
त्रिनेत्रा सर्वभूषाढ्या चारुवेशा मनोरमा॥
पाशाङ्कुशेक्षुचापं च पञ्चबाणधनुर्धरा।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईशानमञ्चपादकाः॥
सदाशिवाख्यपर्यंके संस्थिता परमेश्वरी।
पराशक्तिः सुन्दरीति त्रिपुरेशीति गीयते॥
महामोक्षप्रदा देवी परब्रह्मस्वरूपिणी।
बहुभेदा विशालाक्षी बहुरूपा प्रकाशिनी॥" इति

—श्रीपरातन्त्रवचनम्।

हे श्री विद्यादेवी, महान् ऊर्ध्वाम्नायरूप प्रसिद्ध सिंहासन पर क्रमदीक्षागत समस्त आम्नायों की जनक, कादि, हादि, और सादिमतरूप मन्त्रमय शरीर, ब्रह्मरन्ध्र-मण्डल से मूलाधार तक तथा पुनः वहां से ब्रह्मरन्ध्र तक आरोहावरोह क्रम से विचरण करनेवाली, ह-श्वास एवं ठ-उच्छ्वासरूप क्रियाभ्यास से प्राप्य, इडा-पिंगला और सुषुम्णादि तीन नाड़ियों में सञ्चरणशील, हकारार्ध तथा सार्ध समाधि में प्रासाद बीज के उभयाक्षररूपिणी, अतएव सचैतन्य प्रकाश-विमर्शात्मिका, पञ्च महाप्रेत-पृथ्व्यात्मक ब्रह्मा, जलात्मक विष्णु, तेजसात्मक रुद्र, वाय्वात्मक ईश्वर तथा आकाशात्मक सदाशिव (सगुण भाव से मंच के ब्रह्मादि चार खुर और सदाशिव फलक); निर्गुण भाव से पृथ्व्यादि पांच तत्त्वों का ग्रास करके) साक्षात् चैतन्यरूपिणी सुन्दर पीठ पर योगाभ्यास मत से पञ्चभूतात्मक मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत और विशुद्ध चक्र के ऊपर इड़ा, पिंगला और सुषुम्णादि तीन नाड़ियों के स्पन्दीरूप आज्ञाचक्र में विराजमान, परमात्म-स्वरूपिणी श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी, हजारों सूर्य के समान कान्तिमयी (सगुण भाव में सहस्रार्कवत् तेजस्विनी अरुणवर्णा, निर्गुणभाव में—प्रकाशान्तर्गत विमर्शरूपिणी) काम-देव के स्वरूप को तिरस्कृत करने वाली (सगुणभाव में—अत्यन्त सुन्दर, निर्गुण भाव में विश्व पर सृष्टि के कारणभूत अनुग्रह को करने वाली) युवती (निर्गुणभाव में विश्व को पुनः स्वगर्भ से प्रकट करनेवाली) सूर्यचन्द्राग्निरूप तीनों नेत्रों से युक्त मुखवाली, (निर्गुणभाव में—बिन्दुत्रय समष्टिरूपिणी कामकलात्मिका) गम्भीर हास्यवाली, निर्गुणभाव में—आनन्दरूप), सगुणभाव में—अर्धचन्द्रयुक्त मुकुटधारिणी, निर्गुण-भाव में—परमामृतस्वरूपिणी विश्वम्भरा), रक्तवस्त्रा (निर्गुणभाव में—सूर्यरूप अरुण प्रकाश से आवृत्त विमर्शशक्ति) पाश, अंकुश, पुष्पबाण एवं इक्षुचाप से विभूषित, (निर्गुणभाव में जगद्वशीकरण, जगत्स्तम्भन, शोषण, मोहन, सन्दीपन, तापन तथा मादनरूप पांच पुष्पबाणरूप जगत्जृम्भण एवं जगन्मोहनकारी आयुधों से विभूषित), शुक्ल, अरुण और मिश्र बैन्दवात्मक तथा स्थूल सूक्ष्म, एवं कारणदेह के समाहाररूप त्रिपुर की शक्ति श्रीत्रिपुरसुन्दरी का मैं स्मरण करता हूं ॥२१-२२॥

६—अधराम्नायः

कदाचिद्‌बिन्दूनां विविधललनासारमथनात्,
सुषट्कोणं स्पष्टं वसुदलयुतं रम्यकमलम् ।
चतुर्द्वारोपेतं यदि भवति यन्त्रं परशिवे !
तदा योगेशी त्वं भवसि किल वज्रेति पदयुक् ॥२३॥

अन्वय :— हे परशिवे कदाचित् बिन्दूनां विविधललनासारमथनात् स्पष्टं सुषट्-कोणं वसुदलयुतं रम्यकमलं चतुर्द्वारोपेतं यन्त्रं यदि भवति तदा त्वं किल वज्रेतिपदयुक् योगेशी भवसि ।

व्याख्या :—हे परशिवे ! कदाचित् कस्मिंश्चित् समये। बिन्दूनां पूर्वोक्त-शुक्लारुणमिश्रबिन्दूनां । विविधललनासारमथनात् पूर्वोक्तवत्। स्पष्टं व्यक्तं। सुषट्कोणंषडस्रं । वसुदलयुतं अष्टपत्रयुक्तम्। रम्यकमलं ललितपद्मं। चतुर्द्वारोपेतं भूपुरचक्रयुतं। यन्त्रं चक्रं। यदि तस्मिन्काले। भवति तद्रूपतां याति तदा तस्मिन् काले। त्वं वज्रेतिपदयुक् योगेशी वज्रयोगेशी वज्रयोगिनीरूपा। भवसि असि।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"पूर्वोक्ते पूजयेत्पीठे पद्मेषट्कोणकर्णिके।
धरागृहावृते रम्ये देवीं रम्योपचारकैः" इति

—पद्धत्युक्तागमवचनम्।

भाषानुवाद :—हे परादेवी ! किसी समय पूर्वोक्त शुक्ल, अरुण और मिश्र बिन्दुओं के विविध ललनासार के मथन से व्यक्त षट्कोण, अष्टदल से युक्त उत्तम कमल चार द्वारों से भूषित भूपुरवाला यन्त्र जब बनता है, तब आप वज्रयोगिनीरूप बनती हैं।।२३।।

पुरोक्ताम्नायेभ्यः प्रभवदधराम्नायविषये,
परे वज्रा भूत्वा लससि भुवने चीनमतगा।
तदाऽक्षोभ्याकारः प्रभवति परो नागतनुमान्,
षडाम्नायाश्चेत्थं गिरिशरसवक्त्रैः समुदिताः।।२४।।

अन्वय :— हे परे ? पुरोक्ताम्नायेभ्यः प्रभवदधराम्नाय-विषये (यदा) भुवने चीनमतगा वज्रा भूत्वा (त्वं) लससि। तदा परः नागतनुमान् अक्षोभ्याकारः प्रभवति। इत्थं षडाम्नायाश्च गिरिशरसवक्त्रैः समुदिताः।

व्याख्या :—हे परे ! पुरोक्ताम्नायेभ्यः पूर्वोदितपञ्चाम्नायेभ्यः। प्रभवन् जायमानः एवं अधराम्नायविषयस्तस्मिन्। (यदा) भुवने विश्विस्मिन्। चीनमतगा चीन-क्रमेणाच्या। वज्रा वज्रयोगिनीरूपा। भूत्वा। लससि भासि। तदा तस्मिन् काले परः परशिवः नागतनुमान् नागशरीरी। अक्षोभ्याकारः अक्षोभ्यरूपः। प्रभवति जायते। इत्थं एवं गिरिशस्य शिवस्य रसाः (षट्) वक्त्राणि मुखानि तैः समुदिताः सम्यगुक्ताः।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"श्रृणु त्वमधराम्नायं सावरी चीनमातृका।
अशेषकर्म्मनिर्माणा कलौ शीघ्रफलप्रदा।।
बौद्धमार्गनिरातङ्का चीनामार्गेण पूजिता।
अम्नायान्तरसारा च ख्याता सा वज्रयोगिनि" इति

—श्रीपरातन्त्रवचनम्।

"योगिनी वज्रपूर्वा च पन्नगी नैर्ऋतेश्वरी।
अधराम्नायपीठस्था जैनमार्गप्रपूजिताः" इति
—श्रीवडवानलतन्त्रवचनम्।

"निशामयाधराम्नायगोचरान् देवतामनून्।
यत्राऽऽद्यभूता विख्याता भीमा देवी भयानका"। इति-
—श्रीमहाकालसंहितावचनम्।

भाषानुवाद :—हे परे ! पहले कहे गए पांच आम्नायों से उत्पन्न अधराम्नाय में आप जब विश्व में चीनक्रम से पूज्य वज्रयोगिनीरूप होकर शोभित होती हैं तब श्री परशिव नागशरीरी अक्षोभ्यरूप होते हैं। इस प्रकार भगवान् शिव के छह मुख (छह आम्नायों के रूप में) व्यक्त होते हैं ॥२४॥

अधः पद्मे वज्रां त्रिवदनयुतां मुक्तचिकुरां,
सुरत्नाढ्यां सिंहाजिनमभिदधानामरुणभाम्।
कपालं खट्वाङ्गं डमरुमपि कर्त्रीं श्रुतिकरै—
धृतां त्वामीडेऽहं मनसि शवगां नृत्यचरणाम् ॥२५॥

अन्वय :—अधःपद्मे त्रिवदनयुतां मुक्तचिकुरां सुरत्नाढ्यां सिंहाजिनं अभिदधानां अरुणभां श्रुतिकरैः कपालं खट्वाङ्गं डमरुं कर्त्रीं अपि धृतां शवगां नृत्य-चरणां वज्रां अहं मनसि ईडे।

व्याख्या :—अधःपद्मे अधराम्नाये। त्रीणि च तानि वदनानि मुखानि तैः युता युक्ता तां। मुक्ताः सर्वतः विकीर्णाः चिकुराः केशाः यस्याः सा तां। शोभनानि च तानि रत्नानि मणयः तैः आढ्या पूर्णा तां। सिंहस्य केशरिणः अजिनं चर्म अभिदधानां बिभ्राणां। अरुणा रक्ता भाः कान्तिः यस्याः सा तां। श्रुतिपरिमिताः चतुष्काः कराः भुजाः तैः। कपालं महाशङ्खपात्रं। खट्वाङ्गं तदायुधं। डमरुं वाद्यविशेषं। कर्त्रीं तन्नामायुधं। अपि। धृतां दधानां। शवगां शवासनां। नृत्यप्रयुक्तौ नर्तनप्रयुक्तौ चरणौ पादौ यस्याः सा तां। वज्रां वज्रयोगिनीरूपां। त्वां। अहं मनसि। ईडे स्तौमि।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम्।

"त्रिवक्त्रा रक्तवर्णा च नृत्यपादशवासना।
त्रिनेत्रा मण्डलम्बीतहाराभरणभूषिता ॥३॥
मुण्डमालाविभूषाङ्गी व्यालयज्ञोपवीतिनी।
व्याघ्रचर्म्माम्बरा देवी सिंहचर्म्मोत्तरीयका ॥४॥
"योगिनी श्रीवज्रपूर्वा वज्रघण्टा वरप्रिया।
चतुर्भुजा प्रेतसंस्था बर्बरोर्द्धशिरोरुहा ॥

कर्त्रीकपालखट्वाङ्गं डमरुं बिभ्रती करैः ।
इहैव फलदा नित्या नापवर्गफलप्रदा" ॥

—श्रीपरातन्त्रवचनम् । ३पटले

भाषानुवाद :—अधराम्नाय में त्रिमुखी, मुक्तकेशी, उत्तमरत्न (के आभरणों) से युक्त, सिंह के चर्म को धारण की हुई, अरुण कान्तिवाली, चार भुजाओं में महाशंख का पात्र, खट्वांग, डमरु और कर्तिका को धारण की हुई, शवासना तथा नृत्य के लिए प्रयुक्त चरणों वाली वज्रयोगिनी देवी की मैं मन से स्तुति करता हूं ॥२५॥

अधश्चीनार्च्या त्वं यमदिशि कुलागारललनात्,
प्रसन्ना वै पूर्वे मनुजपबलाच्चोत्तरदिशि ।
शिवाबल्यर्च्याऽऽद्ये ! सु-ममममम्मैः पश्चिमदिशि,
स्फुरस्यूर्ध्वे मातः कुलजमनसि न्याससहितैः ॥२६॥

अन्वय :—हे मातः आद्ये ? त्वं अधः चीनार्च्या, यमदिशि कुलागारललनात् प्रसन्ना, पूर्वे वै मनुजपबलात् (प्रसन्ना), उत्तरदिशि च शिवाबल्यर्च्या, पश्चिमदिशि सुममममम्मैः (प्रसन्ना) । उर्ध्वे न्याससहितैः (प्रसन्ना) (भूत्वा) कुलजमनसि स्फुरसि ।

व्याख्या :—हेमातः जननि ! आद्ये आदिशक्तेः ! त्वं । अधः अधराम्नाये । चीनार्च्या चीनक्रमेणार्चनैः योग्या वा प्रीता । यमदिशि दक्षिणाम्नाये । कुलागारललनात् कुलसन्ध्याविधानात् (कुलसन्ध्या तु गुरुवक्त्रादेवावगन्तव्या) प्रसन्ना सन्तुष्टा । पूर्वे पूर्वाम्नाये । वै निश्चयेन । मनुजपबलात् मन्त्रजपकर्मणा (प्रसन्ना इति शेषः ।) उत्तर-दिशि उत्तराम्नाये । शिवाबल्यर्च्या शिवाबलिविधिना । सन्तुष्टा । पश्चिमदिशि पश्चिमाम्नाये । सुममममम्मैः पञ्चमकारैः । अत एव पञ्चमकार-संयुक्तार्चनविधिना सन्तुष्टा इत्यर्थः । मननमन्त्रमौनमनो (योग) मुद्राः एव दक्षाचाराणां पञ्चमकाराः । वामानां तु मद्यमांसमत्स्यमैथुन (कुण्डगोलादि) मुद्राः एव पञ्चमकारा इत्युच्यते । उर्ध्वे ऊर्ध्वाम्नाये । न्याससहितैः महाषोढादिविविधप्रकारन्यासैः सन्तुष्टाः (भूत्वा इति शेषः) कुलजमनसि कुलीनानां चेतसि । स्फुरसि प्रकाशसे ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

न्यासप्रिया च श्रीविद्या कालिका मैथुनप्रिया ।
शिवाबलिप्रिया गुह्या मांसासवप्रिया कुजा ॥
जपध्यानप्रिया देवी चोन्मनी मोक्षदायिनी ।
जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धि र्जपात् सिद्धिर्वरानने ॥" इति

—श्री बृहद्वडवानलतन्त्रवचनम्।

"महाचीनक्रमाद् दवी तारिणी सिद्धिदायिनी ॥" इति

—श्रीशक्तिसङ्गमतन्त्रवचनम् ।

पर्वाम्नाय दक्षमार्गो वामः स्यात् पश्चिमे परे ।
दक्षिणोत्तरयोरूर्ध्वे मार्गौ तौ वामदक्षिणौ ॥
विहाय सर्वं सर्वत्र कौलमार्गः प्रशस्यते ।" इति
योगात पञ्चमकाराणां वामहस्तेन पूजनात् ।
जपाद्धोमाच्च वामः स्याद्दक्षिणस्तद्विपर्ययात् ॥
तत्त्वतर्पणमन्त्रं तु दामहस्तेन दक्षिण ।
दक्षहस्तेन वामेऽपि विशेषः परिकीर्तितः ॥
दक्षवामक्रियायुक्तः कौलश्चोभयमिश्रितः ॥" इति च

—वडवानलतन्त्रवचनम् ।

भावस्तु त्रिविधो-देव दिव्यवीर-पशुक्रमात् ।
गुरवस्त्रिविधाश्चात्र तथैव मन्त्रदेवताः ॥
शक्तिमन्त्रो महादेव विशेषान्मन्त्रसिद्धिदः ॥
आद्यभावो महादेव श्रेयान् सर्वसमृद्धिदः ।
द्वितीयो मध्यमश्चैव तृतीयः सर्वनिन्दितः ॥" इति

—श्रीभावचूडामणितन्त्रवचनम् ।

भाषानुवाद :—हे आदिशक्ति माता ! आप अधराम्नाय में चीनक्रम से पूज्य हैं, दक्षिणाम्नाय में कुलसन्ध्या-विधान से सन्तुष्ट होती हैं । पूर्वाम्नाय में निश्चय ही मन्त्र-जप के बल से प्रसन्न होती हैं । उत्तराम्नाय में शिवावलिविधि से सन्तुष्ट होती हैं । पश्चिमाम्नाय में पञ्चमकारसंयुक्त अर्चना से सन्तुष्ट होती हैं । ये पञ्चमकार दक्षाचारवालों के लिए १-मनन,-२ मन्त्र, ३-मौन, ४-मनोयोग और ५. मुद्रारूप हैं तथा वामाचार साधकों के लिए १-मद्य, २. मांस, ३-मत्स्य, ४ मैथुन (कुण्डगोलादि) तथा ५-मुद्रा हैं । ऊर्ध्वाम्नाय में महाषोढादि विविध न्यासों से कुलीनों के चित्त में स्फुरित होती हैं ॥२६॥

अवैत्येकाम्नायं यदि कुलजनो भावसहितः,
स मुक्तः स्याद् भुक्त्वा भुवि विविधभोगान् भगवति ! ।
पुनः किं वक्तव्यं जननि ! चतुराम्नायविदुषो,
महोर्ध्वाम्नायज्ञः कथमिह भवेत् स्तुत्य इतरैः ॥२७॥

अन्वय :— हे भगवति जननि ! यदि भावसहितः कुलजनः एकाम्नायं अवैति सः भुवि विविधभोगान् भुक्त्वा मुक्तः स्यात् । पुनः चतुराम्नाय-विदुषः किं वक्तव्यम् ? महोर्ध्वाम्नायज्ञः कथं इह इतरैस्तुत्यः भवेत् ? ।

व्याख्या :—हे भगवति षडैश्वर्यवति । जननि मातः ? यदि । भावसहितः पूर्वोक्त-दिव्यवीरपशुभावमध्यैकभावयुतः । कुलजनः कौलिकः । एक एव अम्नायः तं । अवैति जानाति । सः (कुलजनः) । भुवि पृथिव्यां विविधभोगान् नानासुखैश्वर्यविलासान् । भुक्त्वा अनुभूय मुक्तः स्यात् मुक्तिं प्राप्नोति । (देहान्ते इति भावः) । पुनः भूयः चतुराम्नायविदुषः चतुराम्नायवेत्तुः । किं वक्तव्यं वर्णनीयम् । किमपि वर्णनं नास्ति इत्यर्थः । महोर्ध्वाम्नायज्ञः षडाम्नायक्रमगोद्ध्वाम्नायवेत्ता । कथं केन प्रकारेण । इह संसारे । इतरैः इतरमनुजैः स्तुत्यः स्तोतुं शक्यः । भवेत् । (क्रमदीक्षायुतोद्ध्वाम्नायज्ञो वर्णितुं नैव शक्यते इति भावः) ।

तत्र शास्त्रवचनप्रमाणम् ।

"एकाम्नायञ्च यो वेत्ति स मुक्तो नात्र संशयः ।
किं पुनश्चतुराम्नायवेत्ता साक्षाच्छिवो भवेत् ॥
चतुराम्नायविज्ञानादूर्ध्वाम्नायपरः शिवे ।
तस्मात् तदेव जानीयात् यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ॥
ऊर्ध्वत्वात् सर्वधर्माणामूर्ध्वाम्नायः प्रशस्यते ।
ऊर्ध्वं नयत्यधस्थञ्च ऊर्ध्वाम्नाय इतीरितः " इति ।

—श्रीकुलार्णववचनम् ।

त्वया महेशानि हृदिस्थितोऽहं,
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ।" इति

—आगमवचनप्रमाणम् ।

इति परापूजाप्रकाशे षडाम्नायविवरणम् ।

भाषानुवाद :—हे भगवती माता ! यदि पूर्वोक्त दिव्य वीरादिभावों से युक्त कौल एक आम्नाय को ही जानता है, तो वह संसार में अनेक प्रकार के सुख, ऐश्वर्य-विलासों को भोगकर अन्त में मुक्ति को प्राप्त होता है, फिर चतुराम्नायों के ज्ञाता के बारे में क्या कहा जा सकता है तथा ऊर्ध्वाम्नाय-षडाम्नाय क्रम के ज्ञाता की तो इस संसार में सामान्य मनुष्यों से स्तुति भी क्या की जा सकती है, अर्थात् उसकी महिमा का वर्णन अशक्य है ॥२७॥

विद्यारण्यप्रसादेन रमानाथ-नियोजितः ।
रुद्रदेवानन्दनाथो व्यधाद् भाषान्तरं मुदे ॥

पश्चिमाम्नायात्मकं श्रीकुब्जिकास्तोत्रम्

श्यामा रक्ता त्रिनेत्रा कुचभरनमिता मत्तमातङ्गलीला,
बिम्बोष्ठी चारुवक्त्रा सुरगणनिलया मेखलाबद्धकाञ्ची ।
दिव्यैः रत्नैर्विभूषा-बहुकुसुमधरा बर्बराकेशभारा,
सा पायात् कुब्जिकाख्या प्रकटितविमलज्ञानदिव्यौघसारा ॥१॥

षड्वक्त्रा षट्प्रकारा बहुगुणनिलया बर्बरा घोररूपा,
नेत्रैरष्टादशैर्या परिवृतचतुरा तीव्रबोधातिरौद्री ।
लम्बोष्ठी रक्तनेत्रा शुभयजनकृता दन्तुरा स्तब्धदृष्टिः,
सा देवी कुब्जिकाख्या त्रिभुवननमिता पातु मां मन्त्रयुक्ता ॥२॥

निष्क्रान्ताधारचक्रा तडिदुदयनिभा षड्विधा द्योतयन्ती,
चक्रं व्यावर्तयन्ती घनजघनभरा रश्मिभिः पूरयन्ती ।
एवं यो भक्तियुक्तः स्मरति च सततं बर्बरां तैजसीं च,
तां देवीं कुब्जिकाख्यां वशयति स सुरीः का कथा मानुषीणाम् ॥३॥

या सा शृङ्गाटकारा परशिवविरता देवि शुद्धा भगाख्या,
पीठे जालन्धराख्ये क्रमसुपरिवृता योगिभिर्वीरवृन्दैः ।
गन्धर्वैः सिद्ध-सङ्घैर्ग्रहगणमनुजैरर्चिता सर्वकालं,
सा देवी कुब्जिकाख्या त्रिभुवननमिता पातु मां षट्प्रयुक्ता ॥४॥

सिन्दूराकारगौरा त्रिपुरपुरगता द्योतयन्ती समस्तं,
शक्त्यन्ते शक्तिमध्ये त्रिविधकुलपथे त्रैपथान्ते प्रविष्टा ।
रक्ता वै कृष्णरूपा अकुलकुलमयी ह्लादयन्ती त्रिलोकं,
क्लिन्ना किञ्जल्कहस्ता मदमुदितमुखी कुब्जिका मां पुनातु ॥५॥

पीठानामाद्यपीठं हिमसहितकलामिन्दुबिन्दुं ग्रसन्ती,
पद्मस्था प्रस्फुटन्ती क्रमपदसकले रक्तपुष्पोपचारे ।
संसारे सारयन्ती सुरवरविवरे बिन्दुमध्ये सुगुप्ते,
पञ्चार्णं क्षोभयन्ती शिवरविकरणैः कुब्जिका मां पुनातु ॥६॥

हंसे हंसेतिहंसे कलिमलदहनी निष्कले व्योमतत्त्वे,
क्रीडापद्मासनस्थे सुषिरशिवपदे कौलिनी निष्प्रपञ्चे ।

चातुर्वर्ण्य-प्रचारे प्रचरसि समये वह्न्यधिष्ठानसंस्थ,[1]
अन्तस्तत्त्वे निषण्णे सकलतनुगते कुब्जिके त्वां नमामि ॥७॥

ऊर्ध्वाङ्गोपाङ्गरङ्गा गगनरविपुरे संस्थिताभा मृगाङ्का,
निश्चारे शून्यचारी चरति प्रतिदिनं ब्रह्मरन्ध्रान्तरे च ।
त्रिस्थाने शक्तिचक्रे क्रमति क्रमपदे द्योतयन्ती शरीरं,
अम्बा मां पातु नित्यं हरतु[2] भवभयं कुब्जिका सिद्धिमार्गे ॥८॥

त्वं माता शुद्धचक्रे त्रितयचलचिते चर्चिकायां कुलानां,
तत्त्वस्थानान्तरस्था स्थितशशिकिरणा स्फारयन्ती प्रपूर्णा ।
बिम्बान्ते बिन्दुभिन्ने तरुविपुटपटे मूलदेवी कुकारा,
चक्रे नित्ये रमन्ती शरदि शशिनिभा कुब्जिका त्वं त्रिमूर्तिः ॥९॥

नादान्ते नादयन्ती सचविदलदली सापि या षड्दलस्था
सा रक्ता कृष्णरूपा सपदपदगता सर्वगा सर्वसंस्था ।
सर्वावस्था स्थिताङ्गी त्रिवलयवलिता वलगयन्ती ग्लपन्ती,
क्रूरा पद्मासनस्था विमलमनुपुटे पातु मां कुब्जिकाख्या ॥१०॥

ह्रौं—ह्रीं—हूँक रक्लिन्ने शरसुमधनुरिक्ष्वङ्कुशापाशहस्ते,
ऐँ ब्लूँ रत्नासनस्थागमपमनकृतीपार्थषठस्वरस्थे ।
सर्वावस्थास्थिताऽसावमरगतियुता कौलमार्गैकगम्या,
देवीनामाद्यसिद्धे नव अमरिक्रमे कुब्जिका त्वं गतिर्मे ॥११॥

शून्यत्वात् सर्वलोके न च युवतिनरस्त्वं च देवी न पुंसं,
त्वां चाद्यां यागचक्र पुनरसुरवरैर्वन्दिताञ्च त्रिलोकैः ।
या सिद्धा सिद्धमार्गे पर—अपरपरा कन्यकानां समस्तं,
पीठानामीश्वरी त्वं प्रणमितशिरसा कुब्जिका कौलमार्गे ॥१२॥[3]

---

१. तेजधिष्ठान्तरस्थे । २. हरति । ३. अत्र काव्यप्रयोगानुसारमायुधनाम-परिवर्तनं चायुधवस्तुपरिवर्तनमपि भवति यथावंशाद्यम्नायानुसार च ।

श्रीमहायोनि-नाम श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीकवचाभिधं

।। श्रीपराकवचम् ।।

ॐ नमः शिवाय गुरवे नादबिन्दुकलात्मने ।
श्री गणेशाय नमः । श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।

श्रीभैरव उवाच

क्रमदीक्षाविधानानि त्वयोक्तानि महेश्वरि ।
त्वयात्मनः कुलागारे कवचं यत्सुगोपितम् ।।१।।
अधुना कृपया त्वञ्च तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।

श्रीभैरव्युवाच

शृणु नाथ प्रवक्ष्यामि तन्त्रसारमिदं महत् ।।२।।
एतच्छ्रीकवचस्यास्य परब्रह्म ऋषिः शिवः ।
महती जगतीच्छन्दश्चिच्छक्तिदवतोच्यते ।।३।।
ऐं बीजं ह्लीं तथा शक्तिः सकलह्रीं कीलकं तथा ।
परब्रह्मप्राप्तिहेतौ विनियोगः प्रकीर्तितः ।।४।।
ॐ ह्लीं स्त्रीं हूँ फट् उग्रतारा मूलाधारं ममावतु ।
ह्रीं भुवनेश्वरी पातु स्वाधिष्ठानं च मे सदा ।।५।।
क्रीं हूँ ह्रीं दक्षिणा पातु मणिपूरं तथा मम ।
नमो भगवत्यै हस्ख्फ्रें कुब्जिकायै स्ह्रां स्ह्रीं स्ह्रूं-
ङञणनमे अघोरामुखि छांछीं किणि २ विच्चे ।।६।।
अनाहतं सदा पातु कुब्जिका परमेश्वरी ।
फ्रें ख्फ्रें गुह्यकाली सा विशुद्धं मे च रक्षतु ।।७।।
कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं श्रीं ।
आज्ञाचक्रं महादेवी षोडशी पातु मे सदा ।।८।।
हस्क्ष्म्लवरयूं स्हक्ष्म्लवरयीं ।
नादचक्रं च मे पातु श्रीमदानन्दभैरवः ।।९।।
ह्सौः स्हौः अर्धनारीश्वरी बिन्दुश्च मेऽवतु ।
हंसः सोऽहं सदा पातु सहस्रारं सदा मम ।।१०।।
कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं श्रीं ।
शिरो मे पातु सा देवी महात्रिपुरसुन्दरी ।।११।।
कएईलह्रीं कामेशी भ्रूमध्यं मे सदावतु ।
हसकहलह्रीं वज्रेशी दक्षनेत्रं सदावतु ।।१२।।
सकलह्रीं वामनेत्रं रक्षतु भगमालिनी ।
ह्स्त्रैं हस्कलह्रीं ह्सौः त्रिनेत्रं पातु भैरवी ।।१३।।

ह्लीं श्रीं सौः त्रिपुरासिद्धा कर्णौ मे परिरक्षतु ।
ह्लीं क्लीं क्षुं मां सदा पातु मुखं त्रिपुरमालिनी ॥१४॥
हसैं हस्क्लीं हसौं कण्ठं पातु श्रीत्रिपुराश्रीर्मे ।
हैं हक्लीं हसौं पातु वक्षस्त्रिपुरवासिनी ॥१५॥
दौवारिजौ सदा पातु ह्यणिमाद्यष्टसिद्धयः ।
ह्रीं क्लीं सौः पातु मे नाभि परा त्रिपुरसुन्दरी ॥१६॥
दशमुद्रायुता देवी ममोरू पातु सर्वदा ।
ऐं क्लीं सौः पातु मे जानू श्रीमहात्रिपुरेश्वरी ॥१७॥
षड्दर्शनं सदा पातु जङ्घायुग्मं च सर्वदा ।
श्रं आं सौः त्रिपुरा पातु पादौ च सततं नमः ॥१८॥
ॐ ह्रीँ श्रीँ पातु मां पूर्वे श्रीमहाभुवनेश्वरी ।
कएईल ह्रीं दक्षिणे मां पराद्या परिरक्षतु ॥१९॥
सौः ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीकुजा पश्चिमे मां सदावतु ।
श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः चोत्तरे मां पातु योगेश्वरी परा ॥२०॥
हसकहलह्रीं पातु मामधो वज्रयोगिनी ।
सकल ह्रीं सा ललिता ह्युर्ध्वे मां परिरक्षतु ॥२१॥
श्रीं ५ ॐ ३ क ५ ह ६ स ४ सौः ५ सदावतु ।
सर्वाङ्गं मे च चिद्रूपा महात्रिपुरसुन्दरी ॥२२॥
इति ते कथितं देव ब्रह्मानन्दमयं परम् ।
श्रीमहायोनिराख्यातं कवचं देवदुर्लभम् ॥२३॥
मम तेजसा रचितं श्रीविद्याक्रमसंयुतम् ।
तव स्नेहान्महादेव तवाग्रे तु मयोदितम् ॥२४॥
राज्यं देयं शिरो देयं न देयं कवचं परम् ।
देयं पूर्णाभिषिक्ताय स्वशिष्याय महेश्वर ॥२५॥
अन्यथा नारकी भूयात् कल्पकोटिशतैरपि ।
दिक्सहस्रेण पाठेन ह्यसाध्यं साध्यते क्षणात् ॥२६॥
लक्षं जप्त्वा महादेव तद्दशांशं हुनेद् यदि ।
ब्रह्मज्ञानमवाप्नोति परब्रह्मणि लीयते ॥२७॥
भूर्जे विलिख्य गुटिकां स्वर्णस्थां धारयेद् यदि ।
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ साक्षात्कामेश्वरो भवेत् ॥२८॥
नारी वामभुजे धृत्वा भवेत्त्रिपुरसुन्दरी । इति ।
ॐ तत्सत् श्रीमहानिर्वाणतन्त्रे भैरवीभैरवसंवादे
श्रीमहायोनिनाम श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीकवचम् ।

श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीत्रिशतीस्तोत्रम्

ॐ नमः शिवाय गुरवे नादबिन्दुकलात्मने ।
श्रीदक्षिणामूर्तये नमः

नमः श्रीपरदेवतायै । श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दर्यै नमः ॥

श्रीदेव्युवाच—

देवदेव महादेव भवतानुग्रहकारक ।
यत्त्वयोक्तं श्रुतं सर्वं रहस्यातिरहस्यकम् ॥१॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि सुन्दरीस्तवमुत्तमम् ।
यन्मे सर्वार्थसिद्धिः स्यात्तन्मे वद दयानिधे ॥२॥

ईश्वर उवाच—

एकदा समये देवि ! कुम्भयोनिर्महातपाः ।
सार्धकोटिशताब्दं च सुन्दरीध्यानतत्परः ॥३॥
पश्चाच्छ्रीसुन्दरीदेवी प्रत्यक्षा चाभवत् स्वयम् ।

श्रीसुन्दर्युवाच—

किमर्थं ध्यायसे विप्र न ते किमपि वर्तते ॥४॥
सर्वं दत्तं मया तुभ्यं मासपूजादिकं हितम् ।
यद्यद्गोप्यतमं सर्वं रहस्यं कथितं मया ॥५॥
किमिदानीं कुम्भयोने पृच्छसि त्वं समाहितः ।

अगस्त्य उवाच—

एतेन साधितं सर्वं यन्त्र-मन्त्रार्चनादिकम् ॥६॥
सिद्धयो विविधा दृष्टास्त्वत्पादयुगसेवनात् ।
परन्तु मम सन्देहः कथं घोरे कलौ युगे ॥७॥
त्वदर्चाकरणेऽशक्ता जना न्यासविवर्जिताः ।
भावनारहिता लुब्धा मन्त्रतन्त्र-विवर्जिताः ॥८॥
दाम्भिकाश्च दुराचारा इन्द्रियास्वादतत्पराः ।
तेषां सिद्धिः कथं देवि भवेत् कलियुगे शिवे ॥९॥
यदि मे करुणा चास्ति वात्सल्यं च ममोपरि ।
तदा रहस्यं कथय जय देवि नमोऽस्तुते ॥१०॥

श्रीसुन्दर्युवाच —

धन्योऽसि दृढभक्तोऽसि ज्ञानवानसि कुम्भज ।
तवाग्रे कथयिष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ॥११॥

यस्य संस्मरणादेव राजराजेश्वरो भवेत् ।
यावत्यः सिद्धयः सन्ति उत्तमाधममध्यमाः ॥१२॥

ताः सर्वास्तस्य वशगाः सत्यं सत्यं न संशयः ।
यावन्मन्त्राः समाख्याताः भेदप्रस्तारके मया ॥१३॥

यं विना विफलं यान्ति तमेव व्याहरामि ते ।
विना स्नानं विना सन्ध्यां तर्पणं पूजनं विना ॥१४॥

लभते येन विप्रेन्द्र तत्सर्वं कथयामि ते ।
अस्य कथ्यं तथापि त्वां कथयामि न संशयः ॥१५॥

सावधानेन मनसा शृणु त्वं कुम्भसम्भव ।
न प्रकाश्यमिदं क्वापि सुन्दर्याः प्राणरक्षणम् ॥१६॥

अज्ञानाद् भ्रमतो वापि यदि दैवात् प्रकाशते ।
तस्य जीवं हरिष्यामि इत्याज्ञा शाम्भवीकृता ॥१७॥

आदौ जप्त्वा पञ्चदशीं षोडशीं तदनन्तरम् ।
पठेत्स्तोत्रं सदा भक्त्या सिद्धिः स्यान्नात्र संशयः ॥१८॥

पञ्चोपचारैः सम्पूज्य देवीं श्रीचक्रनायिकाम् ।
निशायां पूजयेद्भक्त्या प्रज्ञां चैव मनोरमाम् ॥१९॥

बिन्दुचक्रे सदा ध्यात्वा देवीं त्रिपुरसुन्दरीम् ।
यः स्तोत्रं पठते नित्यं स शिवो नात्र नात्र संशयः ॥२०॥

अतस्त्वां कथयिष्यामि स्तोत्रं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
मम भक्तिरतो नित्यं यतस्त्वं साधकाग्रणीः ॥२१॥

शृणु विप्रेन्द्र मे स्तोत्रं भक्तियुक्तेन चेतसा ।
यस्य स्मरणमात्रेण शीघ्रं तद्रूपतां व्रजेत् ॥२२॥

अथ विनियोगः —

अस्य श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीत्रिशतीस्तोत्रमन्त्रस्य कामेश्वर ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी राजराजेश्वरी देवता। ऐँ बीजं। सौः शक्तिः। क्लीँ कीलकं मम चतुर्वर्गसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः ॥ ऋष्यादिकं विधाय। मूलेन षडङ्गं कृत्वा-पठेत्।

मूलम्—

ॐ कामेशी कामदा काम्या कमनीया कुलेश्वरी ।
कामाख्या कञ्जपत्राख्या कामदेवप्रपूजिता ॥२३॥

कालनिर्नाशिनी काली कदम्बवनचारिणी ।
कालरात्रीस्वरूपा च कान्तारवनवासिनी ॥२४॥
कामिनी कामिका कान्ता कालेशी कुलपूजिता ।
कादम्बरीप्रिया कुल्ला कुरुकुल्ला कपालिनी ॥२५॥
कपर्दिनी कामकला कलासा च कलात्मिका ।
काम्बोजा कलिदोषघ्नी कुलमार्गविवर्द्धिनी ॥२६॥
क ५ स्वरूपा कामराजात्मिका कला ।
कम्बुकण्ठी कुलीना च कुलीनाचारतत्परा ॥२७॥
कादिवर्णा कहाकक्षा कक्षदेश-निवासिनी ।
कूर्मरूपा कूर्मसंस्था कूर्मपृष्ठविहारिणी ॥२८॥
कमलाक्षी कुलश्रेष्ठा कौलिनी कुलतर्पिता ।
कौसुम्भवर्णा कौसुम्भा कौसुम्भाम्बरधारिणी ॥२९॥
कवीनामग्रणीः काव्या कवित्वफलदायिनी ।
काम्यरूपा काम्यफला काम्यसिद्धिकरी सदा ॥३०॥
कामेश्वरप्रिया कामी कामरूपनिवासिनी ।
कामबीजस्वरूपा व कालसङ्कर्षिणी कुजा ॥३१॥
कुन्दपुष्पप्रिया कुन्दा कुन्दमाल्यविभूषिता ।
कर्णिकारसुशोभाढ्या कर्णिकारप्रसूतिकृत् ॥३२॥
कर्णिकामध्यसंस्था च कर्णिकारप्रपूजिता ।
कहाकहस्वरूपा च कहमन्त्रपरायणा ॥३३॥
कादिमन्त्रस्वरूपा च कादिसिद्धान्तकारिणी ।
क ५ स्वरूपा हसकल ह्रीं स्वरूपिणी ॥३४॥
ऐँ क ५ स्वरूपा च ह्रीँ हसकल ह्रीँ शरीरिणी ।
ऐँ आँ सौः कलह्रीँ च ऐँ आँ सौः कलह्रीँ तथा ॥३५॥
ऐं ऐं ईँ कलह्रीँ रूपा क्लीँ ह्रीं ऐँ कलह्रीं तथा ।
ऐँ क्लीँ सौः कल ह्रीँ चैव हसौँ: ऐँ कलह्रीं तथा ॥३६॥
दक्षिणाम्नायरूपा च पश्चिमाम्नायशाम्भवी ।
चतुष्कटा शाङ्करी च षट्कूटाभैरवी तथा ॥३७॥
क ५ ह्रीँ कलह्रीँ नादबिन्दुस्वरूपिणी ।
कूटस्था कूटमन्त्रस्था उपकूटस्वरूपिणी ॥३८॥
भावकूटस्थिता नित्यं कामकूटनिवासिनी ।
यन्त्रकूटमयीदेवी मन्त्रकूट-विधायिनी ॥३९॥

पञ्चकूटमहामन्त्रपालिनी कटरूपिणी ।
कौलिकाचारसन्तुष्टा कौलिकानन्ददायिनी ॥४०॥
कुलमन्त्रा कुलद्रव्या कुलीनाचारगोपिनी ।
काली कामेश्वरी नित्या कुल्लुका क्लीँ स्वरूपिणी ॥४१॥

क ५ ह ६ सकल ह्रीं च ।
हस्क्ष्मलवरयूँ स्हक्ष्मलवरयीँ ॥४२॥
उन्मनी बीजसंयुक्ता बीजसर्वाङ्गसुन्दरी ।
ऐँ क्लीँ सौः त्र्यक्षरी विद्या ह्रीँ क्लीँ सौः श्रीरमा परा ॥४३॥

हसौँः हस्क्लीँ हसौः श्रीँ हसौँः विद्याडामरेश्वरी ।
हसौँः क्लीँ हसौः श्रीँ च क्लीँ श्रीँ तथैव च ॥४४॥

कवर्गा कुलिशान्ता च कुमारी कपटेश्वरी ।
कार्दसिकभयत्राणा भानुमण्डलचारिणी ॥४५॥
भानवी भानुतेजस्वी भीमा भानुप्रपूजिता ।
भालचक्रस्थिता नित्यं भालरेखाविनाशिनी ॥४६॥

श्रीँ ह्रीँ क्लीँ ऐँ सौः ॐ ह्रीँ श्रीँ क ५ ह ६ स ४ सौः ऐँ क्लीँ ह्रीँ श्रीँ ।
तथा श्रीविद्या षोडशाक्षरी ॥४७॥
बिन्दुचक्रस्वरूपा च षोडशाधारसंस्थिता ।
षोडशारप्रतिष्ठा च षोडशस्वरभूषिता ॥४८॥
षोडशी मन्त्ररूपा च षोडशाक्षररूपिणी ।
शृङ्गारषोडशाराध्या कला षोडशरूपिणी ॥४९॥
मन्त्रदेहा मन्त्रपदा मन्त्रशीर्षा च मन्त्रहृत् ।
मन्त्रमाला महामन्त्रा मन्त्रदेहस्वरूपिणी ॥५०॥
ऐँ शीर्षा क्लीँ मस्तका च सौः ग्रीवा ह्रीं च बाहुका ।
श्रीँ स्तना कूटसर्वाङ्गी ॐकारप्राणरूपिणी ॥५१॥
ह्रीँ रूपा च हसौँ रूपा हूँहूँ कारप्रणादिनी ।
हस्क्ष्मलरूपा च स्हक्ष्मलरूपिणी ॥५२॥
कल ह्रीँ मन्त्ररूपा च सकल ह्रीँ स्वरूपिणी ।
सुधासमुद्रमध्यस्था सुधापानपरायणा ॥५२॥
सुधाक्षर-महामन्त्रा सुधाधाराप्रवर्द्धिनी ।
पद्मा पद्मावती पद्मधारिणी पद्मचारिणी ॥५४॥
षट्कोटिमन्त्ररूपा च नवत्यर्बुदसिद्धिदा ।
पाशाङ्कुशधरा धन्या धरणी धारिणी धरा ॥५५॥

धर्मधात्री धुरीणा च धर्मश्रीः धर्मसाक्षिणी ।
स्वधर्मपालिनी धर्मा धर्मनिन्दकनाशिनी ॥५६॥

त्वरिता अन्नपूर्णा च पूर्णा महिषमर्दिनी ।
परा परात्मा परमा परज्योतिःस्वरूपिणी ॥५७॥

परोपकारिणी पुण्या पुण्यपापविनाशिनी ।
जालन्धरी जलेशी च जलतत्त्वस्वरूपिणी ॥५८॥

जयदा ज्वलिनी ज्वाला जालन्धरनिवासिनी ।
चन्द्रधरा चन्द्रचक्री चान्द्री चक्रेन्द्रपूजिता ॥५९॥

चन्द्रमण्डलमध्यस्था शरच्चन्द्रसमप्रभा ।
कोटिचन्द्रसमाभासा शरच्चन्द्रसमानना ॥६०॥

सहस्रचन्द्रशीताङ्गी बालचन्द्रकिरीटिनी ।
योनिरूप—स्वरूपा च यौवनोन्मत्तरूपिणी ॥६१॥

वृद्धा बाला च युवती युवतीमण्डलप्रिया ।
भुवनेशी भयत्रात्री भगेशी भगपूजिता ॥६२॥

भैरवी भूतिनी भव्या भैरवानन्दवर्द्धिनी ।
सम्पदत्प्रदा भैरवी च षट्कूटाभैरवी तथा ॥६३॥

त्रिपुराभैरवी भीमा तथा कौलेशभैरवी ।
आनन्दभैरवी मायाभैरवी कुलभैरवी ॥६४॥

श्रीबालाभैरवी भीमाभैरवी ज्ञानभैरवी ।
कौलेशीभैरवी छिन्ना श्रीमहाकालभैरवी ॥६५॥

संहारभैरवी गुह्या कौलिकानन्दभैरवी ।
राजराजेश्वरी राज्ञी षट्चक्रकुलनायिका ॥६६॥

षट्चक्रभेदिनी भेद्या सहस्रारनिवासिनी ।
श्रीचक्रमध्यसंस्था च श्रीचक्रक्रमपूजिता ॥६७॥

संहारक्रमपूज्या च सृष्टिक्रमप्रपूजिता ।
सुन्दरी सुन्दराङ्गी च महात्रिपुरसुन्दरी ॥६८॥

श्रीमहासुन्दरी कालसुन्दरी शिवसुन्दरी ।
मन्दारकुसुमप्रीता मन्दराचलवासिनी ॥६९॥

मदिरा मदिराक्षी च मदिरानन्दकारिणी ।
मदनोन्मत्तरूपा च मदनान्तकवल्लभा ॥७०॥

रतिरूपा रतानन्दा रतिकामप्रदायिनी ।
रतिपुष्पप्रिया रम्या रमणी रामणी रतिः ॥७१॥

रक्तवर्णा च रक्ताक्षी रक्तपानपरायणा ।
रक्तपुष्प-प्रियादेवी पायिनी रक्ततर्पिता ॥७२॥

कुमारी चर्चिका चण्डी चण्डासुरविनाशिनी ।
चण्डाट्टहासिनी चण्डा चामुण्डा चण्डनायिका ॥७३॥

पञ्चमी मन्त्रवर्णाढ्या पञ्चमाचारपूजिता ।
पञ्चवषस्थिता पञ्च स्वर्चिका पञ्चचर्चिका ॥७४॥

श्रीईश्वर उवाच—

इति ते कथितं देवि त्रिशतीस्तोत्रमुत्तमम् ।
यस्य संस्मरणादेव त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥७५॥
प्रातः काले च सन्ध्यायां निशायां भक्तिसंयुतः ।
यः पठेत् त्रिशतीस्तोत्रं स एव श्रीसदाशिवः ॥७६॥
वश्याकर्षणविद्वेषमारणोच्चाटनं तथा ।
सर्वं तस्यापि भवति अनायासेन पार्वति ॥७७॥
यस्मिन् देशे पठेद्देवि त्रिशतीस्तोत्रमुत्तमम् ।
न च मारी न दुर्भिक्षं शत्रुपीडा न तत्र वै ॥७८॥
स्वर्णपात्रे कुङ्कुमेन लिखेच्छ्रीचक्रमुत्तमम् ।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यै रक्तपुष्पैर्विशेषतः ॥७९॥
ततश्च षोडशीमन्त्रमयुतं प्रजपेत् सुधीः ।
कुमारीं पूजयेत् पश्चाद् ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः ॥८०॥
पश्चात् स्तोत्रं पठित्वा तु राजराजेश्वरो भवेत् ।
अणिमाद्यष्टसिद्धिः स्यात् परकायप्रवेशनम् ॥८१॥
गुटिकाञ्जनवेतालसिद्धीनामीश्वरो भवेत् ।
सूर्यस्तम्भं जलस्तम्भं वह्निस्तम्भं तथैव च ॥८२॥
इन्द्रजालादिसिद्धिश्च जायते नात्र संशयः ।
जातिक्षये महोत्पाते रणे प्राणस्य संकटे ॥८३॥
कान्तारे वनमध्ये च झञ्झामारुतसङ्कुले ।
ग्रहभूतपिशाचाद्यैरभिभूते महेश्वरि ॥८४॥
पठनाज्जायते देवि संक्षयो नात्र संशयः ।
आदौ शतत्रयं देवि पठित्वा स्तोत्रमुत्तमम् ॥८५॥

ततस्तु हवनं कुर्यात् तावदेव हि पार्वति ।
चतुःषष्ट्युपचारेण षोडशेन वरानने ॥८६॥

प्रकृष्टबलिदानेन यजेच्छ्रीचक्रमुत्तमम् ।
ततः सन्तोष्य यत्नेन द्विजशक्तिकुमारिकाः ॥८७॥

पठेत् स्तोत्रं महादेवि तस्य सिद्धिः प्रजायते ।
कृत्वा श्रीचक्रराजं हि स्थाप्य श्रीपात्रमुत्तमम् ॥८८॥

सञ्जप्य षोडशीमन्त्रं पठेत् स्तोत्रं समाहितः ।
ततः सर्वार्थसिद्धिः स्यात् सत्यं सत्यं न संशयः ॥८९॥

दशावर्तनतो देवि भवेद्राजा वशंवदः ।
विंशत्यावर्तनाद्देवि स्त्रीणामाकर्षणं भवेत् ॥९०॥

परकृत्याविनाशाय शतावर्तनमाचरेत् ।
सहस्रावर्तनाद्देवि वागीशसमतां व्रजेत् ॥९१॥

अयुतावर्तनाद्देवि भ्रष्टराज्यं लभेन्नरः ।
नियुतावर्तनाद्देवि परराष्ट्रंविनाशयेत् ॥९२॥

लक्षावर्तनतो देवि किं तस्य भुवि दुर्लभम् ।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥९३॥

धनं धान्यं तथा पुत्रं प्रज्ञां चैव मनोरमाम् ।
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं सुरेश्वरि ॥९४॥

भूर्जपत्रे लिखेत् स्तोत्रं दिव्यगन्धाष्टकेन च ।
पूजयित्वा विधानेन शान्तकुम्भेन वेष्टयेत् ॥९५॥

कण्ठे वा बाहुमूले वा शिखायां धारयेत् क्रमात् ।
स तु सर्वगुणाढ्यः स्यात् बृहस्पतिसमः कविः ॥९६॥

तेजसा सूर्यसदृशो धनेन च धनाधिपः ।
कान्त्या चन्द्रस्य तुल्योऽसौ रूपेण मदनोपमः ॥९७॥

किं बहूक्तेन देवेशि सत्यं सर्वं ब्रवीमि ते ।
यावत्यः सिद्धयः सन्ति उत्तमाधममध्यमाः ॥९८॥

सर्वाः सिध्यन्ति देवेशि नान्यथा शङ्करो भवेत् ।
दशलक्षं प्रजप्त्वा तु श्रीमहाषोडशीमनुम् ॥९९॥

लक्षं पठति यः स्तोत्रं तस्य सिद्धिफलं शृणु ।
अतीतानागतं चेति वाक्सिद्धिश्च जायते ॥१०१॥

सरस्वतीमुखे तस्य स्वयमेवावसेत् सदा ।
परार्द्धजीवी च भवेत् कामरूपी भवेन्नरः ॥१००॥

देवानाकर्षयेच्चापि खेचरो जायते तथा ।
वर्णितुं शक्यते नास्य महिमा वर्षकोटिभिः ॥१०२॥

साक्षाच्छम्भुः स भवति पाञ्चभौतिकदेहभृत् ।
न षोडशीसमो मन्त्रो न विद्या सुन्दरीं विना ॥१०३॥

श्रीचक्रादन्यचक्रं न नानया सदृशी स्तुतिः ।
रहस्यं कथितं देवि सुन्दर्या यत्प्रकाशितम् ॥१०४॥

अतिगुह्यं महादेवि कथितं कुम्भयोनये ।
सहस्राणि च तन्त्राणि ऊर्ध्वाम्नायशतानि च ॥१०५॥

कथितानि महेशानि न स्त्रोत्रं प्रकटीकृतम् ।
इति कारणतः स्तोत्रं गोपयेन्मतिमान् सदा ॥१०६॥

प्रकाशात् सिद्धिहानिः स्यात् तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ।
अज्ञात्वा स्तोत्रराजं हि षोडशीं जपतेऽधमः ॥१०७॥

अल्पायुः स भवेत्सद्यो देवपताशापमाप्नुयात् ।
इह लोके दरिद्रः स्यादन्ते नरकभाग् भवेत् ॥१०८॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पठनीयं च सर्वदा ।

इति श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीत्रिशतीस्तोत्रम् ॥

—०—

अथ वैदिकी वान्छाकल्पलता

श्रीगुरुभ्यो नमः । श्रीगणेशाय नमः । श्री क्षेत्रपालाय नमः । श्रीसरस्वत्यै नमः । श्रीमत्त्रिपुरसुन्दर्यै नमः ।

मूलमुच्चार्य, तालत्रयं कृत्वा, मूलेन प्राणायामत्रयं कुर्यात् ।

अथ विनियोगः —

ॐ अस्य श्रीवान्छाकल्पलताविद्यागणेशस्य मनोर्नानासूक्तसमूहस्य आनन्दभैरवगणकाङ्गिरसकश्यपवशिष्ठविश्वामित्रसंवनना ऋषयः, देवीगायत्रीनिचृद्गायत्रीपङ्क्त्यनुष्टुप्निचृत्त्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीगणपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रा देवताः, श्रीं बीजम्, ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम्, मम श्रीमहागणपतिमहात्रिपुरसुन्दरीसंवादाग्न्यमृतरुद्रप्रसादवाञ्छितार्थफलसिद्धये वान्छाकल्पलतोपस्थाने विनियोगः । (इति सङ्कल्प्य)

ऋष्यादिन्यासाः —

आनन्दभैवरगणकाङ्गिरसकश्यपवशिष्ठविश्वामित्रसंवननऋषिभ्यो नमः (शिरसि) देवीगायत्रीनिचृद्गायत्रीपङ्क्त्यनुष्टुप्निचृत्त्रिष्टुब्जगतीछन्दोभ्यो नमः (मुखे) । श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीगणपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रदेवताभ्यो नमः (हृदये) । श्रीं बीजाय नमः (गुह्ये) । ह्रीं शक्तये नमः (पादयोः) । क्लीं कीलकाय नमः (आधारे) । (इति न्यस्य मूलेन व्यापकं चरेत् ।)

मूलमन्त्रः —

ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ग्लौं गं क ए ई ल ह्रीं गणपतये हसकहलह्रीं वरवरद सकलह्रीं सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा ।

(इति त्रिचत्वारिंशदर्णो मनुः ।)

मन्त्रन्यासः —

ऐंक्लीं सौः श्रीमत्त्रिपुरसुन्दरी ह्रीं सर्वज्ञायै ह्रां गाँ ब्रह्मात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ऐं ११ ह्रीं नित्यतृप्तायै ह्रीं गीं विष्णवात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा ।

ऐं ११ ह्रीं अनादिबोधितायै ह्रूँ गूँ रुद्रात्मने मध्यमाभ्यां वषट् ।

ऐं ११ ह्रीं स्वन्तत्रायै ह्रैं गैं ईश्वरात्मने अनामिकाभ्यां हुम् ।

ऐं ११ ह्रीं नित्यमलुप्तायै ह्रौं गौं सदाशिवात्मने कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ।

ऐं ११ ह्रीं अनन्तायै ह्रः गः सर्वात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् । (एवं हृदयादिन्यासं विधाय पुनर्मूलेन त्रिव्याप्य ध्यायेत्) । यथा—

ध्यानानि :—

हेमाद्रौ हेमपीठस्थितिममरगणैरीडयमानां विराजत्—
पुष्पेक्ष्विष्वासपाशाङ्कुशकरकमलां रक्तवेषातिरक्ताम् ।
दिक्षूद्यद्भिश्चतुर्भिर्मणिमयकलशैः पञ्चशक्त्यन्वितां स्व-
र्वृक्षैः क्लृप्ताभिषेकां भजत भगवतीं भूतिदामन्त्ययामे ।।१।।
बीजापूरगदेक्षुकार्मुकरुजा चक्राब्जपाशोत्पल—
ब्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः ।
ध्येयो वल्लभया सपद्मकरया श्लिष्टो ज्वलद्भूषया,
विश्वोत्पत्तिविपत्तिसंस्थितिकरो विघ्नेश इष्टार्थदः ।।२।।
धवलनलिनराजच्चन्द्रमध्ये निषण्णं, करधृतवरपाशं साभयं साङ्कुशञ्च ।
अमृतवपुषमिन्दुक्षीरवर्णं त्रिनेत्रं, प्रणमत सुरवन्द्यं मङ्क्षु संवादयन्तम् ।।३।।
स्फुटितनलिनसंस्थं मौलिबद्धेन्दुरेखागलदमृतरसार्द्रं चन्द्रवह्न्यर्कनेत्रम् ।
स्वकरकलितमुद्रावेदपाशाक्षमालं, स्फटिकरजतमुक्तागौरमीशं नमामि ।।४।।

(इति ध्यात्वा, मुद्राः प्रदर्श्य, मानसं पूजयेत्—

श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमहागणपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रेभ्यः लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः (इति अंगुष्ठकनिष्ठिकाभ्याम्) ।

श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमहागणपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रेभ्यः हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः (इति तर्जन्यङ्गुष्ठाभ्याम्) ।

श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमहागणतिपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रेभ्यः यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि नमः (इति अङ्गुष्ठर्जनीभ्याम्) ।

श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमहागणपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रेभ्यः रं वह्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि नमः (इति अङ्गुष्ठमध्यमाभ्याम्) ।

श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमहागणपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रेभ्यः वं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि नमः (अङ्गुष्ठानामिकाभ्याम्) ।

श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीमहागणपतिसंवादाग्न्यमृतरुद्रेभ्यः सं सर्वात्मकं सर्वोपचारं सर्मपयामि । (इति संहताभिः सर्वाङ्गुलीभिः दद्यात्) ।

(एवं मानसोपचारैः सम्पूज्य, गुरुदेवतात्मनामैक्यं भावयित्वा रात्रावन्त्ययामे सूर्योदयात् पूर्वं शनैः शनैः जपेत् ।)

(१) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं "ईं",

(२) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परोरजसे सावदोम्,

(३) ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसकल हसकहल सकलह्रीं,

प्रत्येकं दशवारं जप्त्वा मूलमन्त्रान् पठेत् । यथा—

ॐ ऐं श्रीं ह्रीं लं क्लीं ग्लौं गं गुगुरीं कएईलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं ऐं क्लीं

सौः (२९)

यदद्यकच्चवृत्रहन्नुदगा अभिसूर्य सर्वं तदिन्द्र ते वशे (२३)

गं क्षिप्रप्रसादनाय गणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय स्वाहा सौः क्लीं ऐं (३६) ॥१॥ अविघ्नमस्तु।

ॐ ऐं···सौः २९।[1] तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् २३॥ गं···ऐं (३६) ॥२॥[2] शुभानि सन्तु।

ॐ ऐं···सौः २९। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ (३२)। गं···ऐं (३६) ॥३॥ प्रतिकूलं मे नश्यतु।

ॐ ऐं···सौः २९। जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः।

स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वानावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥४३॥ गं···ऐं। (३६) ॥४॥ अनुकूलं मेऽस्तु।

ॐ ऐं···सौः २९। समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥४४॥ गं···ऐं॥३६॥५॥ सर्वतो मे रक्षाऽस्तु।

ॐ ऐं···सौः २९। सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर॥ (३०)। गं···ऐं ३६॥६॥ सर्वसम्पत्समृद्धिरस्तु।

ॐ ऐं···सौः २९। समानो···जुहोमि॥४४॥ गं···ऐं॥३६॥७॥ सर्वतो रक्षा मेऽस्तु।

ॐ···सौः २९। जात···त्यग्निः। (४३)॥ गं···ऐं ३६॥८॥ अनुकूलं मेऽस्तु।

ॐ···सौः २९। त्र्यम्ब···मृतात्॥ (३३)॥ गं···ऐं ३६॥९॥ प्रतिकूलं मे नश्यतु।

ॐ···सौः २९। तत्स···यात्॥ (२३)॥ गं···ऐं ३६॥१०॥ शुभानि सन्तु।

ॐ ऐं···सौः २९। यदद्य···वशे॥ (२३)॥ गं···ऐं ३६॥११॥ अविघ्नमस्तु।

शिखरोपस्थानम् —

ॐ ऐं···सौः २९। गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आनः श्रृण्वन्नूतिभिः सीदसादनम् ४८॥ गं···ऐं (३६) ॥१२॥ ॐ भूः। ॐ भूः भद्रं नो अपि वातय मनः। ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय बशमानय स्वाहा॥१३॥

१-२-द्वितीय मन्त्र से प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ और अन्त में दिये गये प्रतीक तथा सभी पर्यायों के मध्य में दिये मन्त्रों के प्रतीकों के अनुसार पूरे मन्त्रों का पाठ करें।

नलसूक्तम् —

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तिदः[1] ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम्[2] ।
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे[3] ॥

इति प्रथमः पर्यायः

—०—

ॐ ऐं···सौः २६ । यदद्य···वशे (२३) ॥ गं···ऐं ३६ ॥१॥
ॐ ऐं···सौः २६ । तत्स···यात् (२३) ॥ गं···ऐं ३६ ॥२॥
ॐ ऐं···सौः २६ । त्र्यम्ब···मृतात् (३२) ॥ गं···ऐं ३६ ॥३॥
ॐ ऐं···सौः २६ । जात···त्यग्निः (४३) ॥ गं···ऐं ३६ ॥४॥
ॐ ऐं···सौः २६ । समा···होमि (४४) ॥ गं···ऐं ३६ ॥५॥
ॐ ऐं···सौः २६ । संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते (३२) ॥ गं···ऐं ३६ ॥६॥
ॐ ऐं···सौः २६ । समा···होमि (४४) ॥ गं···ऐं ३६ ॥७॥
ॐ ऐं···सौः २६ । जात···त्यग्निः (४३) ॥ गं···ऐं ३६ ॥८॥
ॐ ऐं···सौः २६ । त्र्यम्ब···मृतात् (३२) ॥ गं···ऐं ३६ ॥९॥
ॐ ऐं···सौः २६ । तत्स···यात् (२३) ॥ गं···ऐं ३६ ॥१०॥
ॐ ऐं···सौः २६ । यदद्य···वशे (२३) ॥ गं···ऐं ३६ ॥११॥

शिखरोपस्थानम्—

ॐ ऐं···सौः २६ । अग्ने मन्युं प्रतिनुदन् परेषामदब्धो गोपाः परिपाहि नस्त्वम् । प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्ते मैषां प्रबुधां (मरुतां विविधा) विनेशत् ४३ ॥ गं···ऐं ॥१२॥

ॐ भुवः मरुतामोजसे स्वाहा ॥१३॥ ॐ ह्लीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्लीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं वशमानय वशमानय स्वाहा ॥

नलसूक्तम्—

दमयन्तीनलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तिदः ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने ! प्रसीद मे ॥

इति द्वितीयः पर्यायः

१-दोषोपशान्तये, २-सर्वेषां तारतम्येनमनुष्याश्च इत्यधिकम्, ३-(चतुर्ष्वपि) ।

ॐ ऐं···सौः २९। यदद्य···वशे २३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥१॥

ॐ ऐं···सौः २९। तत्स···यात् २३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥२॥

ॐ ऐं···सौः २९। त्र्यम्ब···मृतात् ३२ ॥ गं···ऐं ३६ ॥३॥

ॐ ऐं···सौः २९। जात···त्यग्निः ४३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥४॥

ॐ ऐं···सौः २९। समानो···होमि ४४ ॥ गं···ऐं ३६ ॥५॥

ॐ ऐं···सौः २९। समानो···होमि ४४ ॥ गं···ऐं ३६ ॥६॥

ॐ ऐं···सौः २९। समानो···होमि ४४ ॥ गं···ऐं ३६ ॥७॥

ॐ ऐं···सौः २९। जात···त्यग्निः ४३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥८॥

ॐ ऐं···सौः २९। त्र्यम्ब···मृतात् ३२ ॥ गं···ऐं ३६ ।९॥

ॐ ऐं···सौः २९। तत्स···यात् २३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥१०॥

ॐ ऐं···सौः २९। यदद्य···वशे २३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥११॥

शिखरोपस्थानम्—

ॐ ऐं···सौः २९. यो मामग्ने भागिनं सन्तं यथाभागं चिकीर्षति। अभागमग्ने तं कुरु मामग्ने भागिनं कुरु स्वाहा ३५ ॥ गं···ऐं ३६ ॥१२॥

ॐ स्वः इन्द्रो विश्वस्य राजति ॥१३॥ ॐ ह्रीं वं ठं अमृतरुद्राय [आं] ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय वशमानय स्वाहा।

नलसूक्तम्—

दमयन्तीनलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम्।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तिदः ॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम्।
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे ॥

इति तृतीयः पर्यायः

—०—

ॐ ऐं···सौः २९। यदद्य···वशे २३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥१॥

ॐ ऐं···सौः २९। तत्स···यात् २३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥२॥

ॐ ऐं···सौः २९। त्र्यम्ब···मृतात् ३२ ॥ गं···ऐं ३६ ॥३॥

ॐ ऐं···सौः २९। जात···त्यग्निः ४३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥४॥

ॐ ऐं···सौः २९। समानो···होमि ४४ ।गं···ऐं ३६ ॥५॥

ॐ ऐं···सौः २९। समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः। समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ३१ ॥ गं···ऐं ३६ ॥६॥

ॐ ऐं···सौः २९। समानो···होमि ४४ ॥ गं···ऐं ३६ ॥७॥

ॐ ऐं···सौः २९। जात···त्यग्निः ४३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥८॥

ॐ ऐं···सौः २९। त्र्यम्ब···मृतात् ३२ ॥ गं···ऐं २३ ॥९॥

ॐ ऐं···सौः २६। तत्स···यात् २३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥१०॥

ॐ ऐं···सौः २६। यदद्य···वशे २३ ॥ गं···ऐं ३६ ॥११॥

शिखरोपस्थानम् —

ॐ ऐं···सौः २६। अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्।

जाग्रत्स्वप्नः सङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु' ४० ॥ गं···ऐं ३६ ॥१२॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शन्नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१३॥

ॐ ह्लीं वं ठं अमृतरुद्राय आँ ह्लीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं वशमानय वशमानय स्वाहा।

नलसूक्तम् –

दमयन्ती-नलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम्।
अविवादो भवेदत्र कलिदोष-प्रशान्तिदः॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम्।
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे॥

इति चतुर्थः पर्यायः

(इति जपित्वा) **गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।**
सिद्धिर्भवतु देवेशि !, त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥

इति जप निवेदयेत्॥

एवं प्रत्यहं निशान्ते चतुर्वारं पठेत्। सर्वैश्वर्यं भवति। सर्वं वेदान्तफलमश्नुते।

इति वाञ्छाकल्पलताप्रयोगः समाप्तः॥

—०—

शान्तिपाठः —

ॐ य ऋते चिदभिश्रिषः पराजत्रुभ्यः। आतृदः सन्धाता सन्धिं मघवा पुरु वसुरिष्कर्ता विहृतं पुनः॥१॥ एते पन्थानः सवितः पूर्वेऽस्मे अरणवे तात। अन्तरिक्षे तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगमौ रक्षा च नौ अधी च देव ब्रूहि॥२॥ ॐ अदीदिन्द्रं प्रस्थिते मातोतसोमम्। प्रयस्वन्तः प्रतिहर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः॥३॥ ॐ क्षेत्रस्य पतिना वयं हि तेनैव जयामसि। गामश्वं पोषयित्न्वासिनो मृडातीदृशे॥४॥ ॐ स्योना···शर्म सप्रथाः॥५॥

चतुर्दश मिथुनानां नमस्काराः

१—ॐ ऐं सरस्वतीवाक्पतिभ्यां स्वाहा
,, श्रीं रमारमेशाभ्यां ,,
,, ह्लीं उमामहेश्वराभ्यां स्वाहा
,, क्लीं रतिमन्मथाभ्यां ,,
,, ग्लौं भूवराहाभ्यां ,,
,, गं पुष्टिगणपतिभ्यां ,,
,, गं सिद्धयामोदाभ्यां ,,

८—ॐ गं समृद्धिप्रमोदाभ्यां स्वाहा
,, ,, कान्तिसुमुखाभ्यां ,,
,, ,, मदनावतीदुर्मुखाभ्यां ,,
,, ,, मदद्रवाविघ्नाभ्यां ,,
,, ,, द्राविणीविघ्नकर्तृभ्यां ,,
,, ,, वसुधाराशङ्खनिधिभ्यां ,,
,, ,, वसुमतीपद्मनिधिभ्यां ,,

—०—

अथ श्रीवाञ्छाकल्पलता-विधानम्

प्रजपेदिष्टसिद्धयर्थं विद्याग्रहणसंयुतः ।
तद्भवेद् वेदिकामन्त्रो भेदेनेत्यर्थविद्यया ॥१॥

अष्टवारं जपेन्नित्यं सर्वाभीष्टमवाप्नुयात् ।
जपेत् षोडशसाहस्रं तर्पणाहुतियोगतः ॥२॥

श्रीविद्यायास्तु साधर्म्यं साधयेत्साधितो मनुः ।
पुरश्चर्याविधानेन साधकः सर्वदा जपेत् ॥३॥

तत्सर्वं लभते नित्यं वाञ्छाकल्पलतामनोः ।
इत्येतत्कथितं गुह्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥४॥

जपेत्षोडशसाहस्रं षट्साहस्रमथापि वा ।
पायसेन हुनेद्देवि नारिकेलफलैस्तिलैः ॥५॥

(इति कुमारसंहितायाम्)

(तन्त्रान्तरे)

वाञ्छाकल्पलतायास्तु न होमो न च तर्पणम् ।
स्मरणादेव सिद्धिः स्यात् यदिच्छति हि तद्भवेत् ॥१॥

एकावृत्त्या वशे लक्ष्मीः पञ्चावृत्त्या वशं जगत् ।
दशावृत्त्या तथा विष्णुरुद्रशक्तिर्भवेदिह ॥२॥
सार्वभौमः शतावृत्त्या भवत्येव न संशयः ।

(प्रयोगपारिजातात्)

आवर्तनत्रयाल्लक्ष्मीः पञ्चावृत्त्या वशं जगत् ।
दशावृत्त्या शिवादीनां देवानां शक्तिभाग्भवेत् ॥२॥

लक्षावृत्त्या सार्वभौमो दरिद्रोऽपि न संशयः ।
नार्थबादोऽथर्वणस्य वशिष्ठवचनं यथा ॥२॥

एतज्जपस्य कालस्तु रात्रौ यामत्रयावधि ।
रात्रेश्चतुर्थप्रहरात् तथा सूर्योदयावधि ॥३॥

दैवात् प्रमादाद्वा एकस्मिन् दिने जपलोपे सति अनशनेन वाञ्छाकल्पलतामन्त्रस्य अष्टोत्तरशतावृत्तिपाठाः कर्तव्याः ।

इति शम् ।

अथ तन्त्रोक्तं वाञ्च्छाकल्पलता-विद्या-सूक्तम्

॥ ॐ नमः शिवाय गुरवे नाद-बिन्दु-कलात्मने ॥

॥ ॐ ह्रीं नमः परदेवतायै ॥

विनियोगः —

ॐ अस्य श्रीतन्त्रोक्तवाञ्च्छाकल्पलतासूक्तमन्त्रस्य दक्षिणामूर्तिऋषिः पङ्क्तिश्छन्दः श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी पराभट्टारिका देवता ऐं क ५ बीजं सौः स ३ शक्तिः क्लीं ह ५ कीलकं श्रीवाञ्च्छाकल्पलतारूपिणी-श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी-वरप्रसादसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः —

दक्षिणामूर्तिऋषये नमः (शिरसि)। पङ्क्तिच्छन्दसे नमः (मुखे)। श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीपराभट्टारिकादेवतायै नमः (हृदये)। ऐं क ५ बीजाय नमः (गुह्ये)। सौः स ३ शक्तये नमः (पादयोः)। क्लीं ह ५ कीलकाय नमः (नाभौ)। विनियोगाय नमः (सर्वाङ्गे)।

कर-हृदयादिन्यास :—

मूल-खण्डत्रयेण द्विरावृत्त्या कर्त्तव्यः।

ध्यानम् —

ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनस्थिताम्।
भक्तवाञ्च्छितदां नित्यां महात्रिपुरसुन्दरीम् ॥१॥

ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले देवीं सर्वार्थदायिनीम्।
महागणपसंयुक्तां संवदन्तीं मुहुर्मुहुः ॥२॥

(इति ध्यात्वा मानसोपचारैः सम्पूज्य मूलं त्रिवारं जपेत्।)

अथ प्रथमः पर्यायः —

ॐ अं ह्रीं आं गं क्षिप्रभैरवाय जगत्त्रयमोहनाय कएईलह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय हसकहल ह्रीं ग्लौं ग्लीं ग्लां ह्रीं गणेशाय सर्वार्थसाधकाय सकल ह्रीं सिद्धिं समृद्धि पूरय पूरय यः यः यः ह्रीं यः श्रीं यः क्लीं यः ऐं ह्रीं क्लीं फट् स्वाहा ऐं क्लीं सौः लौः क्लीं ह्रं ह्रीं ह्रीं ईं ईं क्लीं क्लीं क्लीं महात्रिपुरमालिनि ह्रीं हसौः क्लीं श्रीचक्रस्वामिनि सर्वज्ञानमातृके सर्वसाधकानां सिद्धिं समृद्धि कुरु कुरु हस्क्लीं हस्क्लीं श्रीं हैं श्मशानवासिनि खड्ग-खट्वाङ्गयुक्ते भक्ताभीष्टवरप्रदे हसैं जुं जुलाक्षीत्रिपुरे आत्मरक्षां

कुरु कुरु सर्वदुष्टप्रदुष्टान् आकर्षय २ मर्दय २ शोषय २ आवेशय २ ह्रीं र र र हसकलरडीं सकलरडीं ऐं ऐं ऐं वागीश्वरीत्रिपुरे कएईलरडीं हूं स्त्रैं क्लीं खादय २ ह्रीं ओं यः ओं यः ओं यः एहि एहि परमेश्वरि कौलेश्वरानन्दनाथमयि रामानन्दनाथमयि ज्ञानानन्दनाथमयि शुक्लानन्दनाथमयि प्रकाशानन्दनाथमयि ह्रींङ्कारीत्रिपुरे परात्परे विश्वेश्वरानन्दनाथमयि गणेशानन्दनाथमयि शाम्भवीत्रिपुरे ह्रीं वः ठः अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वश्यं कुरु कुरु जगन्मोहिनि क्लीं क्लीं क्लीं क्लैं क्लीं क्लीं क्लीं ह्रीं श्रीं श्रीं ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा ।

दमयन्तीनलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोष-प्रशान्तये ॥१॥
ऐकमत्यं भवदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ॥२॥
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे ॥२॥

॥ इति प्रथमः पर्यायः ॥

अथ द्वितीयः पर्यायः —

(मूलं त्रिवारं पठेत् । इति सम्प्रदायः)

ॐ ह्रीं ॐ ग्लौं वक्रतुण्डाय ह्रीं श्रीं श्रीं हैं क्लों हस्रौं हस्रौं ह्रीं क्लीं कएईल ह्रीं गं क्षिप्रप्रसादनाय गणपतये वर वरद आं ह्रीं क्रों सर्वजनं मे वशमानय ह्रीं क्रीं ऐं वागीश्वरि त्रिपुरललिते हसकहलह्रीं श्रीं ग्लौं श्रीं क्लीं ग्लौं ह्रीं ३ ऐं ३ क्रीं ३ ह्रीं ३ क्लीं ३ सकल ह्रीं ह्रूं ह्रूं सर्वसिद्धेश्वरि ज्रां भ्रीं त्रीं हस्क्लीं हस्क्लीं ऐं ह्रौं ह्रीं सौः हस्रीं त्रीं रीं ३ सकलमनोभवे सकलजनस्य हृदयगतं शीघ्रं भाषय २ अतीतानागतं दर्शय २ ॐ ३ घे घे घे स्वाहा । ॐ वं ठः अमृतरुद्राय अमृतरुद्राय आं ह्रीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

दमयन्तीनलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोषप्रशान्तये ॥१॥
ऐकमत्यं भवदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरिता च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे ॥२॥

॥ इति द्वितीयः पर्यायः ॥

अथ तृतीयः पर्यायः —

ॐ ह्रीं ॐ क्लीं ॐ श्रीं ॐ ऐं ॐ त्रीं ॐ ह्रीं हुं ॐ ॐ म्ली ॐ माहेश्वरीत्रिपुरे क्रीं सिद्धाम्बात्रिपुरे हुं कुलजात्रिपुरे श्रीं देहि मे दापय हसौं हसौं एहि एहि मदद्रवे त्रिपुरे हस्क्लीं पाहि पाहि र र र र र र घ्रूं घ्रूं प्रचट प्रचट वद वद वाग्वादिनि गुह्यविद्येश्वरि स्त्रीपुंनपुंसकान् सर्वजीवान् झटिति आकर्षय आकर्षय निर्दलय निर्दलय मर्दय शोषय श्रीं देहि देहि ॐ श्रीं श्रीं त्रिपुरेश्वरि ह्रीं ह्रीं माहेश्वरि श्रीमद् व्योमाम्बिके गगनानन्दनाथ सकल ह्रीं हसकहल ह्रीं कएईल ह्रीं हसौं भैरवानन्दनाथमयि गगनानन्दनाथमयि

विभवे सर्वसौभाग्यं देहि मे दापय रक्ष रक्ष ह्लीं कं कां कीं कूं कैं कौं श्रां ह्लीं क्लां ह्लां ग्रीं ध्रीं ऐं सौः क्लीं हिलि त्रिपुरे मिलिमिलि त्रिपुरे ऐं रेते सुरेते क्रीं त्रिभुवनजनमातृ-कामयि ह्लीं ठः ह्लीं ठः ह्लीं ठः कं ठः ऐं ठः ईं ठः लं ठः ह्लीं ठः हं ठः सं ठः कं ठः हं ठः लं ठः ह्लीं ठः सं ठः कं ठ लं ठः ह्लीं ठः ह्लीं ह्लीं ह्लीं कं कं कं ह्लीं ह्लीं ह्लीं एं एं एं ईं ईं ईं लं लं लं ह्लीं ह्लीं ह्लीं सौं हं हं हं सं सं सं कं कं कं हं हं हं ल लं लं ह्लीं ह्लीं ह्लीं सं सं सं कं कं कं लं लं लं ह्लीं ह्लीं ह्लीं त्रिपुरे भगवति स्वाहा ।

ॐ ह्लीं वं ठः अमृतरुद्राय आं ह्लीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

दमयन्तीनलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवदत्र कलिदोषप्रशान्तये ॥१॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरता च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे ॥२॥

॥ इति तृतीयः पर्यायः ॥

अथ चतुर्थः पर्यायः —

ॐ ह्लीं क्लीं ग्लौं मोहि मोहिनि श्रीं ह्लीं हसौः ऐं त्रीं क्लीं मोहय हुं फट् कामबाणेश्वरीत्रिपुरे ग्रीं गायत्रीत्रिपुरे श्रीं सावित्रीत्रिपुरे ऐं शारदापरमेश्वरीत्रिपुरे सर्वसभां संक्षोभय संक्षोभय द्रां द्रीं द्रूं द्रैं द्रौं द्रः प्लां प्लीं प्लूं प्लैं ह्रैं ह्लीं हसौं एहि एहि भगमाले भगोदरि भगनिवासिनि भगविच्चे भगोदरीत्रिपुरे सर्वान् भगान् वशमानय प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वश्यं कुरु कुरु हसीं असिद्धसाधिनि यथामनीषितं कार्यं तन्मे सिद्ध्यतु स्वाहा ।

ॐ ह्लीं वं ठं अमृतरुद्राय आं ह्लीं क्रों प्रतिकूलं मे नश्यत्वनुकूलं मे वशमानय स्वाहा ।

दमयन्तीनलाभ्यां च नमस्कारं करोम्यहम् ।
अविवादो भवेदत्र कलिदोष-प्रशान्तये ॥१॥
ऐकमत्यं भवेदेषां ब्राह्मणानां पृथग्धियाम् ।
निर्वैरता च जायेत संवादाग्ने प्रसीद मे[1] ॥२॥

---

१. रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर स्नानादि करके पूजा-स्थान पर बैठे और वहां 'अद्येतयदि-मम श्रीपराम्बा-भगवती-महात्रिपुरसुन्दरी-प्रसादसिद्धिपूर्वकं...... मनोभीष्टसिद्ध्यर्थं वाञ्छाकल्पलताविद्यया अमुकसंख्याकं पारायणमहं करिष्ये । तदङ्गत्वेनात्मशुद्धि-भूशुद्धि-भूतशुद्धि-अन्तर्मातृकादिक-न्यासांश्च करिष्ये ।' ऐसा विनियोग करके न्यास करे तदनन्तर पाठ करे ।

—सम्पादकः

श्रीमदाद्यशङ्कराचार्याणां परमगुरुवर—

परमपूज्य-श्रीगौडपादाचार्य-विरचिता

श्रीसुभगोदयस्तुतिः

—०—

भवानि! त्वां वन्दे भवमहिषि सच्चित्सुखवपुः,
परकारां देवीममृतलहरीमैन्दवकलाम्।
महाकालातीतां [1]कलितसरणीकल्पिततनुं,
सुधासिन्धोरन्तर्वसतिमनिशं वासरमयीम् ॥१॥

मनस्तत्त्वं जित्वा नयनमथ नासाग्रघटितं,
[2]पुनर्व्यावृत्ताक्षः स्वयमपि यदा पश्यति पराम्।
तदानीमेवास्य स्फुरति बहिरन्तर्भगवती,
परानन्दाकारा परशिवपरा काचिदपरा ॥२॥

मनोमार्गं जित्वा मरुत इह नाडीगणजुषो,
निरुद्ध्यार्कं सेन्दुं दहनमपि सञ्ज्वाल्य शिखया।
सुषुम्णां संयोज्य श्लथयति च षड्ग्रन्थि-शशिनं,
तवाज्ञाचक्रस्थं [3]विलयति महायोगिसमयी ॥३॥

यदा तौ चन्द्रार्कौ निजसदनसंरोधनवशा—
[4]दशक्तौ पीयूषस्रवणहरणे सा च भुजगी।
प्रबुद्धा क्षुत्क्रुद्धा दशति शशिनं बैन्दवगतं,
सुधाधारासारैः स्नपयसि तनुं बैन्दवकले ॥४॥

पृथिव्यापस्तेजः पवनगगने तत्प्रकृतयः,
[5]स्थितास्तन्मात्रास्ता विषयदशकं मानसमिति।

१-कलितसरणिं कल्पिकतनुं। २-पुनर्व्यावृत्ताक्षिद्वयमपि। ३-श्लथयति, विलसति। ४-दशक्ता। ५-स्थितास्तन्मात्राप्ता।

[1]ततो माया विद्या तदनु च महेशः शिव इतः,
परं तत्त्वातीतं मिलितवपुरिन्दोः परकला ॥५॥
कुमारी यन्मन्द्रं ध्वनति च ततो योषिदपरा,
कुलं त्यक्त्वा [2]रौति स्फुटति च [3]महाकालभुजगी ।
ततः पातिव्रत्यं भजति दहराकाशकमले,
सुखासीना योषा भवसि भवसीत्काररसिका ॥६॥
त्रिकोणं ते कौलाः कुलगृहमिति प्राहुरपरे,
चतुष्कोणं प्राहुः समयिन इमे बैन्दवमिति ।
[4]सुधासिन्धौ तस्मिन्सुरमणिगृहे सूर्यशशिनो—
रगम्ये रश्मीनां समयसहिते त्वं [5]विहरसे ॥७॥
त्रिखण्डं ते चक्रं शुचिरविशशाङ्कात्मकतया,
मयूखैः [6]षट्त्रिंशद्दशयुततया खण्डकलितैः ।
पृथिव्यादौ तत्त्वे पृथगुदितवद्भिः परिवृतं,
[7]भवेन्मूलाधारात्प्रभृति तव षट्चक्रसदनम् ॥८॥
शतं चाष्टौ वह्नेः शतमपि कलाः षोडश रवेः,
शतं षट् च त्रिंशत्सितमयमयूखाश्चरणजाः ।
य एते षष्टिश्च त्रिशतमभवंस्त्वच्चरणजा,[9]
[10]महाकौलैस्तस्मान्न हि तव शिवे कालकलना ॥९॥
त्रिकोणं चाधारं [11]त्रिपुरतनु तेऽष्टारमनघे,
[12]भवेत् स्वाधिष्ठानं पुनरपि दशारं मणिपुरम् ।
दशारं ते संवित्कमलमथ मन्वश्रकमुमे,
विशुद्धं स्यादाज्ञा शिव इति ततो बैन्दवगृहम् ॥१०॥

१-तया । २-काचित् । २-महाकालपतगी, महानील-भुजगी । ४-सुधासिन्धोस्तस्मिन् । ५-विहरसि । ६-षट्त्रिंशत्त्रिशतयुतमाखण्ड०, षट्त्रिंशच्छतयुततया ७-भवेन्मूलाधारप्रभृति । ८-षट्त्रिंशद्द्वे, षट्त्रिंशद्वै सितमयि । ९-चरणगा । १०-महाकालस्तस्मात् । ११-त्रिभुवननुते० त्रिभुवननुतेष्वार० । १२-तव स्वाधिष्ठानं भगवति ।

त्रिकोणे ते वृत्तत्रितयमिभकोणे वसुदलं,
कलाश्रं मिश्रारे भवति भुवनाश्रे च[1] भुवनम् ।
चतुश्चक्रं शैवं निवसति [2]भगे शाक्तिकमुमे,
प्रधानैक्यं षोढा भवति च तयोः शक्तिशिवयोः ॥११॥
कलायां बिन्द्वैक्यं तदनु च तयोर्नादविभवे,
तयोर्नादैनैक्यं तदनु च कलायामपि तयोः ।
तयोर्बिन्दावैक्यं त्रितयविभवैक्यं परशिवे,
[3]तदेवं षोढैक्यं भवति हि सपर्या समयिनाम् ॥१२॥
कला नादो बिन्दुः क्रमश इह वर्णाश्च चरणं,
षडब्जं चाधारप्रभृतिकममीषां च मिलनम् ।
[4]तदेवं षोढैक्यं भवति खलु येषां समयिनां,
चतुर्थैक्यं तेषां भवति हि सपर्या समयिनाम् ॥१३॥
तडिल्लेखामध्ये स्फुरति मणिपूरे भगवती,
चतुर्धैक्यं तेषां भवति च चतुर्बाहुरुदिता ।
धनुर्बाणानिक्षूद्भवकुसुमजानङ्कुशवरं,
तथा पाशं बिभ्रत्युदितरविबिम्बाकृतिरुचिः[5] ॥१४॥
भवत्यैक्यं षोढा भवति भगवत्याः समयिनां,
मरुत्वत्कोदण्डद्युतिनियुतभासा समरुचिः ।
भवत्पाणिव्रातो दशविध इतीदं मणिपुरे,
भवानि ! प्रत्यक्षं तव वपुरुपास्ते न हि परम् ॥१५॥

इत्यैक्यनिरूपणम् ।

भवानि श्रीहस्तैर्वहसि फणिपाशं सृणिमथो,
धनुः पौण्ड्रं पौष्पं शरमथ जपस्रक्शुकवरौ ।

१-त्रिभुवनम् । २-दशे शक्तिकमुभे, भगे शाक्तकमुमे । ३-तथैवं । ४-तथैवं । ५-कृतिरुचिम् ।

अथ द्वाभ्यां मुद्रामभयवरदानैकरसिकां,[१]
क्वणद्वीणां द्वाभ्यां [२]त्वमुरसि कराभ्यां च बिभृषे ॥१६॥

त्रिकोणैरष्टारं त्रिभिरपि दशारं समुदभूद्,
दशारं भूगेहादपि च भुवनाश्रं समभवत् ।
ततोऽभून्नागारं नृपतिदलमस्मात् त्रिवलयं,
[३]चतुर्द्वाः प्राकारत्रितयमिदमेवाम्ब ! [४]शरणम् ॥१७॥

चतुःषष्टिस्तन्त्राण्यपि [५]कुलमतं निन्दितमभूद्,
यदेतन्मिश्राख्यं मतमपि भवेन्निन्दितमिह ।
शुभाख्याः पञ्चैताः श्रुतिसरणिसिद्धाः प्रकृतयो,
महाविद्यास्तासां भवति [६]परमार्थो भगवती ॥१८॥

स्मरो मारो मारः स्मर इति [७]परो मारमदनः,
स्मरानङ्गाश्चेति[८] स्मरमदनमाराः स्मर इति ।
त्रिखण्डः खण्डान्ते [९]कलितभुवनेश्यक्षरयुत-
श्चतुः पञ्चार्णास्ते त्रय इति च पञ्चाक्षरमनुः[१०] ॥१९॥

त्रिखण्डे त्वन्मन्त्रे शशिसवितृवह्न्यात्मकतया,
स्वराश्चन्द्रे लीनाः सवितरि कलाः कादय इह ।
यकाराद्या वह्नावथ कषयुगं बैन्दवगृहे,
निलीनं सादाख्ये शिवयुवति नित्यैन्दवकले ॥२०॥

ककाराकाराभ्यां स्वरगणमवष्टभ्य निखिलं,
कलाप्रत्याहारात् सकलमभवद् व्यञ्जनगणः ।
त्रिखण्डे स्यात् प्रत्याहरणमिदमन्वक्कषयुग[११]-
क्षकारश्चाकाशेऽक्षर-तनुतया चाक्षरमिति ॥२१॥

१-०रसिके । २-त्वमुरसि च । ३-चतुर्धा । ४-चरणम् । ५-कुलनुतं निन्दित-मिदं तदेत० । ६-परमार्था, परमार्थो भगवति । ७-स्मरो । ८-०श्चैते । ९-कलित-भुवने ते क इति यः । १०-०मनोः । ११-०मञ्चत्कषयुगं ।

[1]विदेहेन्द्रापत्यं श्रुत इह ऋषिर्यस्य च मनो-
रयं चार्थः सम्यक् श्रुतिशिरसि तैत्तिर्यकऋचि ।
ऋषिं हित्वा चास्या हृदयकमले नैतमृषिमि-
त्यृचाभ्युक्तः पूजाविधिरिह भवत्याः समयिनाम् ॥२२॥

त्रिखण्डस्त्वन्मन्त्रस्तव च सरघायां निविशते,
श्रियो देव्याः शेषो यत इह समस्ताः शशिकलाः ।
त्रिखण्डे त्रैखण्ड्यं निवसति समन्त्रे च सुभगे,
षडब्जारण्यानी त्रितययुतखण्डे निवसति ॥२३॥

त्रयं चैतत् स्वान्ते परमशिवपर्यङ्कनिलये,
परे [2]सादाख्येऽस्मिन्निवसति चतुर्धैक्यकलनात् ।
स्वरास्ते लीनास्ते भगवति कलाश्रे च सकलाः,
ककाराद्या वृत्ते तदनु चतुरश्रे च यमुखाः ॥२४॥

हलो बिन्दुर्वर्गाष्टकमिभदलं शाम्भववपु-
श्चतुश्चक्रं [3]शक्रस्थितमनुभयं शक्तिशिवयोः ।
निशाद्या दर्शाद्याः श्रुतिनिगदिताः [4]पञ्चदशधा,
[5]भवेयुर्नित्यास्तास्तव जननि ! मन्त्राक्षरगणाः ॥२५॥

इमास्ताः षोडश्यास्तव च सरघायां शशिकला-
स्वरूपायां लीना निवसति तव श्रीशशिकला ।
अयं प्रत्याहारः श्रुत इह कलाव्यञ्जनगणः,
ककारेणाकारः स्वरगणमशेषं कथयति ॥२६॥

क्षकारः पञ्चाशत्कल इति [6]हलो बैन्दवगृहं,
[7]ककारादूर्ध्वं स्याज्जननि ! तव नामाक्षरमिति ।
भवेत्पूजाकाले मणिखचितभूषाभिरभितः,
प्रभाभिर्व्यालीढं भवति मणिपूरं सरसिजम् ॥२७॥

१-विदेहो नैर्ऋत्याः सुत इह ऋषिर्यः स च । २-सादाख्यास्मिन् । ३-शक्तास्थित०, शक्तोस्थित० । ४-पञ्चदश ता । ५-नित्याप्तास्तव । ६-हरो । ७-क्षाकारा० ।

वदन्त्येके वृद्धा मणिरिति जलं [1]तेन निबिडं,
परे तु त्वद्रूपं मणिधनुरितीदं समयिनः ।
अनाहत्या [2]नादः प्रभवति सुषुम्णाध्वजनित-
स्तदा वायोस्तत्र प्रभव इदमाहुः समायिनः ॥२८॥

तदेतत्ते संवित्कमलमिति संज्ञान्तरमुमे,
भवेत्संवित्पूजा भवति कमलेऽस्मिन् समयिनाम् ।
विशुद्ध्याख्ये चक्रे वियदुदितमाहुः समयिनः,
सदापूर्वो देवः शिव इति हिमानीसमतनुः ॥२९॥

त्वदीयैरुद्द्योतैर्भवति च विशुद्ध्याख्यसदनं,
भवेत्पूजा देव्या हिमकरकलाभिः समयिनाम् ।
सहस्रारे चक्रे निवसति कलापञ्चदशकं,
तदेतन्नित्याख्यं भ्रमति सितपक्षे समयिनाम् ॥३०॥

अतः शुक्ले पक्षे [3]प्रतिदिनमिह त्वां भगवतीं,
निशायां सेवन्ते निशि चरमभागे समयिनः ।
शुचि स्वाधिष्ठाने रविरुपरि संवित्सरसिजे,
शशी चाज्ञाचक्रे हरिहरविधिग्रन्थय इमे ॥३१॥

कलायाः षोडश्याः प्रतिफलितबिम्बेन सहितं,
तदीयैः पीयूषैः पुनरधिकमाप्लावितनुः ।
सिते पक्षे सर्वास्तिथय इह कृष्णेऽपि च समा,
यदा चामावास्या भवति न हि पूजा समयिनाम् ॥३२॥

इडायां पिङ्गल्यां चरत इह तौ सूर्यशशिनौ,
तमस्याधारे तौ यदि तु [4]मिलितौ सा तिथिरमा ।
तदाज्ञाचक्रस्थं शिशिरकरबिम्बे रविनिभं,
दृढव्यालीढं सद्विगलितसुधासारविसरम् ॥३३॥

१-लीननिबिडं । २-सादः । ३-प्रतिदिनमहस्त्वां । ४-तुलिती ।

महाव्योमस्थेन्दोरमृतलहरीप्लावितततनुः,
[1]प्रशुष्यद्वै नाडीप्रकरमनिशं प्लावयति तत् ।
यदाज्ञायां विद्यु न्नियुतनियुताभाक्षरमयी,
[2]स्थिता विद्यु ल्लेखा भगवति विधिग्रन्थिमभिनत् ॥३४॥
ततो गत्वा ज्योत्स्नामयसमयलोकं [3]समयिनां,
पराख्या सादाख्या जयति शिवतत्त्वेन मिलिता ।
सहस्रारे पद्मे शिशिरमहसां बिम्बमपरं,
तदेव श्रीचक्रं सरघमिति तद्बैन्दवमिति ॥३५॥
वदन्त्येके सन्तः परशिवपदे तत्त्वमिलिते,
ततस्त्वं [4]षड्त्रिंशी भवसि शिवयोर्मेलनवपुः ।
त्रिखण्डेऽस्मिन् स्वान्ते परमपदपर्यङ्कसदने,
परे सादाख्येऽस्मिन्निवसति [5]चतुर्धैक्यकलनात् ॥३६॥
[6]क्षितौ वह्निर्वह्नौ वसुदलजले दिङ् मरुति दिक्-
[7]कलाश्रे मन्वश्रं दृशि [8]वसुरथो राजकमले ।
[9]प्रतिद्वैतग्रन्थिस्तदुपरि चतुर्द्वारसहितं,
[10]महीचक्रं चैकं भवति भगकोणैक्यकलनात् ॥३७॥

इति मन्त्रचक्रैक्यम्

[11]षडब्जारण्ये त्वां समयिन इमे पञ्चकसमां,
यदा संविद्रूपां विदधति च षोढैक्यकलिताम्[12] ।
मनो जित्वा[13] चाज्ञासरसिज इह प्रादुरभवत्,
तडिल्लेखा नित्या भगवति तवाधारसदनम् ॥३८॥
भवत्साम्यं केचित् त्रितयमिति[14] कौलप्रभृतयः,
परं तत्त्वाख्यं [15]चेत्यपरमिदमाहुः समयिनः ।

१-प्रशुष्यद्वे शन्त० । २-सिता । ३-ससमया । ४-षट्विंशा । ५-चतुर्थैक्य० ।
६-महावह्नि० । ७-कलारे । ८-वसुरधो । ९-प्रतिद्वयै तद्ग्रन्थि० । १०-महाचक्रं ।
११-षडब्जारण्यैस्त्वां । १२-०कलितम् । १३-०सरसिजमिह । १४- कौम्भप्र० ।
१५-चेत्स पर इद०, परमिद० ।

क्रियावस्थारूपं प्रकृतिरभिधापञ्चकसम,
तदेषां साम्यं [1]स्यादवनिषु च यो वेत्ति स मुनिः ॥३९॥

इत्यैक्यनिरूपणम्

वशिन्याद्या अष्टावकचटतपाद्याः प्रकृतयः,
स्ववर्गस्थाः स्वस्वायुधकलितहस्ताः स्वविषयाः ।
[2]यथावर्गं वर्णप्रचुरतनवो याभिरभवं-
स्तव प्रस्तारास्ते त्रय इति जगुस्ते समयिनः ॥४०॥

इमा नित्या वर्णास्तव चरणसम्मेलनवशा-
न्महामेरुस्थाः [3]स्युर्मनुमिलनकैलासवपुषः ।
वशिन्याद्या एता अपि [4]तव सबिन्द्वात्मकतया,
महीप्रस्तारोऽयं क्रम इति रहस्यं समयिनाम् ॥४१॥

इतिप्रस्तारत्रयनिरूपणम्

भवेन्मूलाधारं तदुपरितनं चक्रमपि तद्-
द्वयं तामिस्राख्यं शिखिकिरणसम्मेलनवशात् ।
तदेतत्कौलानां प्रतिदिनमनुष्ठेयमुदितं,
भवत्या वामाख्यं मतमपि परित्याज्यमुभयम् ॥४२॥

अमीषां कौलानां भगवति भवेत्पूजनविधि-
स्तव स्वाधिष्ठाने तदनु च भवेन्मूलसदने ।
अतो बाह्या पूजा भवति भगरूपेण च ततो
निषिद्धाचारोऽयं निगमविरहोऽनिन्द्यचरिते ॥४३॥

नवव्यूहं कौलप्रभृतिकमतं[5] तेन स विभु-
र्नवात्मा देवोऽयं जगदुदयकृद्भैरववपुः[6] ।

१-त्वामवनिषु । २-यदा वर्गा वर्णप्रचुरतरवो । ३-०स्थास्यन्मनु० । ४-च सहबि० । ५-प्रभृतिकमिदं । ६-०कृच्छैशववपुः ।

नवात्मा वामादि-प्रभृतिभिरिदं [1]भैरववपु-
र्महादेवी ताभ्यां जनकजननीमज्जगदिदम् ॥४४॥

भवेदेतच्चक्रद्वितयमतिदूरं समयिनां,
विसृज्यैतद्युग्मं तदनु मणिपूराख्यसदने ।
त्वया [2]सृष्टैर्वारप्रतिफलितसूर्येन्दुकिरणै-
[3]र्द्विधा लोके पूजां विदधति भवत्याः समयिनः ॥४५॥

अधिष्ठानाधारद्वितयमिदमेवं[4] दशदलं,
सहस्राराज्जातं [5]मणिपुरमतोऽभूद् दशदलम् ।
हृदम्भोजान्मूलान्नृपदलमभूत् स्वान्तकमलं,
तदेवैको बिन्दुर्भवति जगदुत्पत्तिकृदयम् ॥४६॥

सहस्रारं बिन्दुर्भवति च ततो बैन्दवगृहं,
तदेतस्माज्जातं जगदिदमशेषं [6]सकरणम् ।
ततो मूलाधाराद् द्वितयमभवत् तद्दशदलं,
सहस्राराज्जातं तदिति दशधा बिन्दुरभवत् ॥४७॥

तदेतद्बिन्दोर्यद्दशकमभवत्तत्प्रकृतिकं,
दशारं सूर्यारं नृपदलमभूत् स्वान्तकमलम्[7] ।
रहस्यं कौलानां द्वितयमभवन्मूलसदनं,
[8]तथाधिष्ठानं च प्रकृतिमिह सेवन्त[9] इह ते ॥४८॥

अतस्ते कौलास्ते भगवति दृढप्राकृतजना,
इति प्राहुः प्राज्ञाः कुलसमयमार्गद्वयविदः ।
महान्तः सेवन्ते सकलजननीं बैन्दवगृहे,
शिवाकारां नित्याममृतझरिकामैन्दवकलाम् ॥४९॥

१-बैन्दववपुः । २सृष्टि वारि० । ३-र्विभालोके । ४-०मेदद्दशः । ५-मणिपुर-मितो० । ६-नकरणम् । ७-०न्नेत्रकमलम् । ८-तदा । ९-मथ सेवन्त्विह च ते ।

इदं [१]कालोत्पत्तिस्थितिलयकरं पद्मनिकरं,
त्रिखण्डं श्रीचक्रं मनुरपि च[२] तेषां च मिलनम् ।
तदैक्यं षोढा वा भवति च चतुर्धेति च तथा,
तयोः साम्यं पञ्चप्रकृतिकमिदं शास्त्रमुदितम् ॥५०॥

उपास्तेरेतस्याः फलमपि च सर्वाधिकमभू-
त्तदेतत्कौलानां फलमिह हि चैतत्समयिनाम् ।
सहस्रारे पद्मे सुभगसुभगोदेति[३] सुभगे,
परं सौभाग्यं यत्तदिह तव सायुज्यपदवी ॥५१॥

[४]अतोऽस्याः संसिद्धौ सुभगसुभगाख्या गुरुकृपा-
कटाक्षव्यासङ्गात् स्रवदमृतनिष्यन्दसुलभा ।
तथा विद्धो योगी विचरति निशायामपि दिवा,
[५]दिवा भानू रात्रौ विधुरिव [६]कृतार्थीकृतमतिः ॥५२॥

इति परम-पूज्य-श्रीगौडपादाचार्यवर्य-विरचिता
सुभगोदयस्तुतिः
सम्पूर्णा ।

१-कौलोत्पत्ति० । २-तु । ३-०क्तेति सुभगं । ४-अतस्ते संसिद्धा । ५-दिवा वा रात्रौ वा । ६-कृतार्थीकृत इति ।
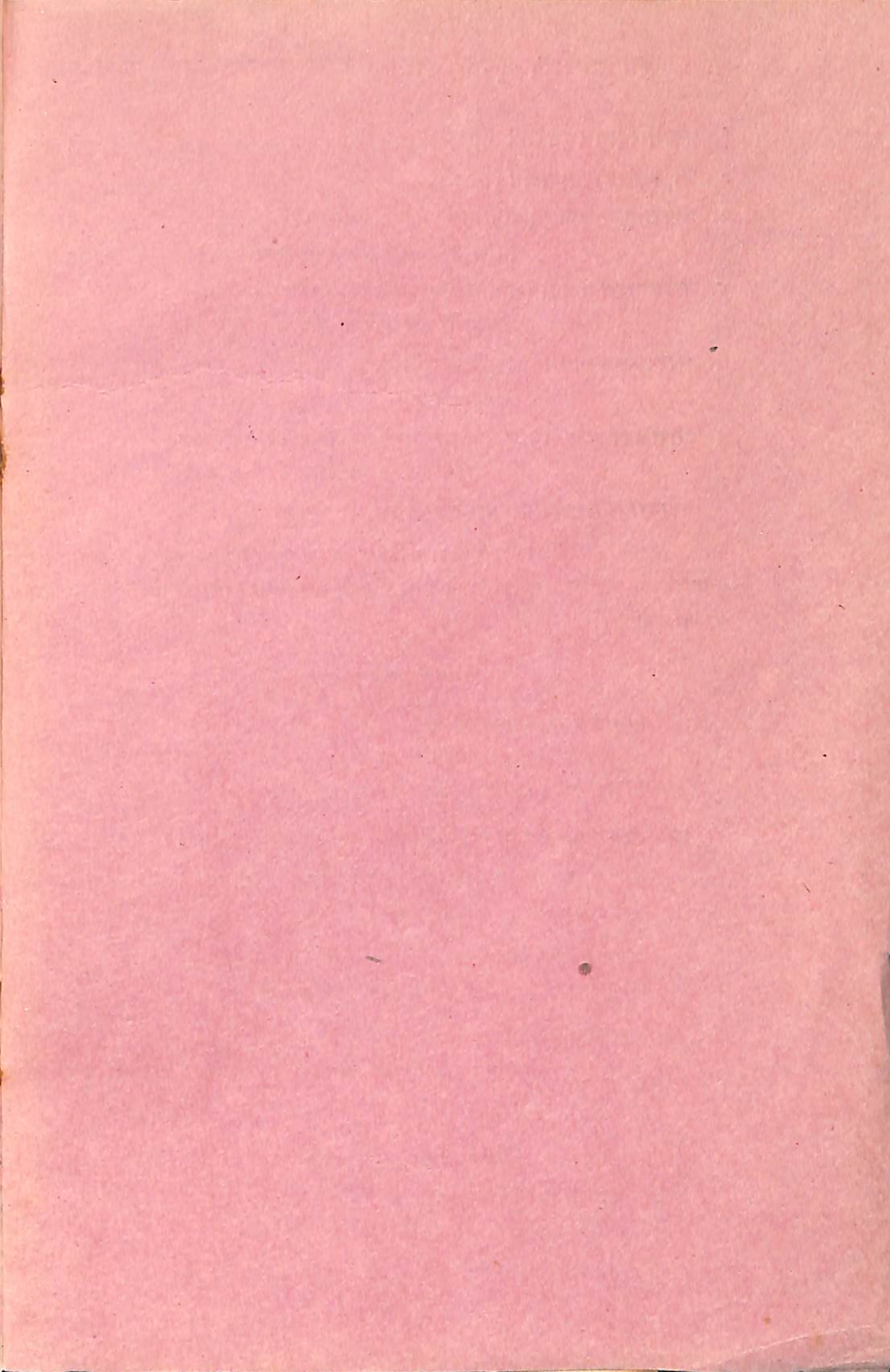
शक्ति-पीठ, मुडेटी द्वारा प्रकाशित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

१. **सन्ध्या-रहस्य** (गुजराती भाषा में) — मू० २=००
२. **श्री कालिका-नित्यार्चन** (संस्कृत) — (अप्राप्य)
३. **श्रीपरा-पूजा-प्रकाश** (श्रीयन्त्रार्चन तथा तत्सम्बन्धी विभिन्न उपासना-साहित्य से परिपूर्ण) — (यन्त्रस्थ)
४. **षोडशावरण-वन्दना** (श्रीयन्त्र में पूज्य १६ आवरण—देवताओं के नाम एवं मन्त्र से युक्त) — ,,
५. **श्रीपरा-खड्गमाला** (सृष्टि-स्थिति-संहारादि क्रम से समन्वित) — ,,
६. **श्रीपक्षिराज-पञ्चाङ्गम्** (आकाशभैरव-कल्पोक्त श्री शरभेश्वर उपासना तथा विविध प्रयोगों से युक्त) — ,,
७. **षडाम्नाय-रहस्यमाला** (महामेधासाम्राज्यान्तक्रमयुता) — ,,

इनके अतिरिक्त और भी कतिपय अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के सम्पादन एवं प्रकाशन की योजना शक्तिपीठ से सम्बद्ध **श्रीनिगमागमानुसन्धान-केन्द्र'** के माध्यम से की जा रही है।

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

१. **आचार्य पं० रमानाथ शास्त्री**
श्री निगमागमानुसन्धान केन्द्र,
शक्तिपीठ, मु० मुडेटी (जि० साबरकांठा, गुजरात)

२. **श्री हर्षनाथ रमानाथ शास्त्री**, बी० कॉम०, एल-एल० बी०
बी. आर/२ श्री विजया भवन, आल्टामाउण्ट रोड,
बम्बई—४००,०१६ (महाराष्ट्र)

३. **श्रीनाथ ट्रेडिंग कम्पनी**
श्रीनिवास पोलोग्राउण्ड, हिम्मतनगर, (गुजरात)

४. आचार्य पं० रमानाथ शास्त्री
११६/१४२६ धीरज हाउसिंग सोसायटी, मणिनगर, खोखरा महम्मदिया
अहमदाबाद—३८०००८

५. निगमागमानुसन्धान-साधना-केन्द्र
मोटा अम्बाजी (बनासकांठा, गुजरात)

६. डॉ० रुद्रदेव त्रिपाठी, आचार्य
१४५ बी० कटवारिया सराय, नई दिल्ली—१६